201
प्रेरक नीति कथाएँ

शिवकुमार गोयल

201 प्रेरक नीति कथाएँ

शिवकुमार गोयल

PRABHAT BOOKS
A Division of Prabhat Prakashan
ISO 9001: 2008 Publishers

लेखकीय

धर्मशास्त्रों, नीतिशास्त्रों की कथाएँ तथा ऋषि-मुनियों, वीर-वीरांगनाओं, विभिन्न क्षेत्रों के आदर्श पुरुषों के जीवन प्रसंग आदर्श जीवन जीने, अपना कर्तव्यपालन करने की पे्ररणा देने में हमेशा से सहायक रहे हैं। एक बार-भगवान् श्रीराम महर्षि विश्वामित्रजी के सत्संग के लिए पहुँचे। विश्वामित्रजी ने उन्हें जैसे ही पुरानी कथाएँ सुनाईं कि वे मंत्र मुग्ध हुए और रुचिपूर्वक रातभर सुनते रहे—'कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचि रजनी जग जाम सिरानी'। कथाएँ और प्रसंग सुनकर उनसे पे्ररणा प्राप्त करने की पुरानी परंपरा रही है। बच्चे दादा-दादी, नाना-नानी व माता-पिता के मुख से प्रेरक कथाएँ सुनने के लिए लालायित रहा करते थे। इन आदर्श कथाओं, पावन प्रसंगों से बालकों को सत्य बोलने, माता-पिता, वृद्धजनों व गुरुजनों की सेवा व सम्मान करने, धर्मानुसार आदर्श जीवन जीने की स्वत: पे्ररणा मिलती थी।

पुराने समय में चौपालों पर रात के समय ग्रामीण इकट्ठे होकर कथा सुनते-सुनाते थे। कुछ स्थानों पर रामचरितमानस की कथा सुनी जाती थी। इतिहास के किस्से (प्रसंग) सुनकर लोग प्रेरणा लेते थे। श्रीराम, कृष्ण, शिव, हनुमान, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर आदि के जीवन के प्रसंग सुनकर लोग प्रेरणा प्राप्त किया करते थे। उन्हें इन संक्षिप्त कथाओं व प्रसंगों से 'करणीय' और 'अकरणीय' अर्थात् क्या करने योग्य है, क्या न करने योग्य है की सहज ही में शिक्षा मिल जाती थी। उदाहरणार्थ, महाभारत के समय जुआ खेलने का दुष्यरिणाम किस प्रकार भुगतना पड़ा, पुत्र के अंध मोह ने किस प्रकार राजा धृतराष्ट्र की बुद्धि भ्रष्ट कर डाली ये सब प्रसंग श्रोताओं को बुराइयों से बचने की प्रेरणा देने में सहायक होते थे।

इतिहास, धर्मग्रंथों व संसार के प्रमुख महापुरुषों की जीवनियों का अध्ययन करने के दौरान मेरे मन मे यह भाव पैदा हुआ कि यदि इन कथाओं व प्रसंगों को सरल व रोचक भाषा में छोटी-छोटी बोध-कथाओं के रूप में लिखा जाए तो वे पाठकों के लिए अवश्य रुचिकर व प्रेरणा देने वाले होंगे।

'कल्याण' के संपादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार ने एक बार कल्याण का 'सत्कथा विशेषांक' प्रकाशित किया था। उन्होंने मेरे पिताश्री (भक्त रामशरणदासजी) से आग्रह करके अनेक सत्कथाएँ लिखवाईं व उन्हें विशेषांक में प्रकाशित किया। सन् 1967 में एक दिन श्री पोद्दारजी ने मुझे भी प्रेरणा दी कि बड़ी कथाओं की जगह छोटी-छोटी बोध कथाएँ लिखा करूँ। 'कल्याण' पत्रिका में मेरी लिखी बोध कथाएँ समय-समय पर प्रकाशित होने लगीं। हिंदी दैनिक 'अमर उजाला' के संपादक श्री अतुल माहेश्वरी ने तो एक दिन मुझसे इच्छा व्यक्त की कि उनके पत्र में प्रतिदिन मेरी लिखी बोधकथा 'धर्मक्षेत्रे' स्तंभ में प्रकाशित हो। मैंने लिखना शुरू कर दिया तथा पूरे बारह वर्षों से यह स्तंभ नियमित प्रकाशित हो रहा है। चार हजार से ज्यादा नीति कथाएँ मैं अब तक लिख चुका हूँ।

इस दौरान मेरी लिखी प्रेरक नीति कथाएँ पढ़कर असंख्य पाठकों के पत्र मुझे नियमित मिलते रहते हैं। कुछ पाठक जब यह लिखते हैं कि बोधकथा पढ़कर उन्हें अमुक दुर्गुण त्यागने अथवा कोई भी सद्गुण ग्रहण करने की प्रेरणा मिली अथवा बोधकथा 'जीवन दीप' की तरह उसका मार्गदर्शन करने लगीं तो यह पढ़कर मुझे जो अनूठा आत्म-संतोष मिलता है उसका वर्णन नहीं कर सकता।

यदि एक भी पाठक इन नीति कथाओं को पढ़कर कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सका तो मैं अपना लेखन सार्थक मानूँगा।

भक्त रामशरणदास भवन,

—शिवकुमार गोयल

बीच पट्टी,
पिलखुवा-245304 (पंचशीलनगर)
(उ.प्र.)

1.

अनूठी गुरु शिक्षा

भगवान् श्रीकृष्ण को उज्जयिनी के सुविख्यात विद्वान् और धर्मशास्त्रों के प्रकांड पंडित ऋषि संदीपनीजी के पास विद्याध्ययन के लिए भेजा गया। ऋषि संदीपनी श्रीकृष्ण और दरिद्र परिवार में जन्मे सुदामा को एक साथ बिठाकर विभिन्न शास्त्रों की शिक्षा देते थे। श्रीकृष्ण गुरुदेव के यज्ञ-हवन के लिए स्वयं जंगल में जाकर लकड़ियाँ काटकर लाया करते थे। वे देखते कि गुरुदेव तथा गुरु पत्नी—दोनों परम संतोषी हैं। श्रीकृष्ण रात के समय गुरुदेव के चरण दबाया करते और सवेरे उठते ही उनके चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया करते।

शिक्षा पूरी होने के बाद श्रीकृष्ण ब्रज लौटने लगे, तो ऋषि के चरणों में बैठते हुए हाथ जोड़कर बोले, 'गुरुदेव, मैं दक्षिणा के रूप में आपको कुछ भेंट करना चाहता हूँ।'

ऋषि संदीपनी ने मुसकराकर सिर पर हाथ रखते हुए कहा, 'वत्स कृष्ण, ज्ञान कुछ बदले में लेने के लिए नहीं दिया जाता। सच्चा गुरु वही है, जो शिष्य को शिक्षा के साथ संस्कार देता है। मैं दक्षिणा के रूप में यही चाहता हूँ कि तुम औरों को भी संस्कारित करते रहो।' ऋषि जान गए कि मैं तो मात्र गुरु हूँ, यह बालक आगे चलकर 'जगद्गुरु कृष्ण' के रूप में ख्याति पाएगा। उन्होंने कहा, 'वत्स, मैं यही कामना करता हूँ कि तुम जब धर्मरक्षार्थ किसी का मार्गदर्शन करो, तो उसके बदले में कुछ स्वीकार न करना।'

श्रीकृष्ण उनका आदेश स्वीकार कर लौट आए। आगे चलकर उन्होंने अर्जुन को न केवल ज्ञान दिया, अपितु उनके सारथी भी बने।

●●●

2.

पतन के कारण

पांडवों को समय-समय पर भगवान् श्रीकृष्ण का मार्गदर्शन प्राप्त होता रहता था। युधिष्ठिर धर्मशास्त्रों के अनुसार आचरण करने के कारण ही 'धर्मराज' कहलाते थे। वे अपने छोटे भाइयों को धर्मशास्त्रों का उपदेश देते हुए प्राय: कहते थे 'अहंकार पतन का सबसे प्रमुख कारण होता है। अत: कभी भी अहंकार को पास नहीं फटकने देना चाहिए।'

अंत समय में पांडव महाप्रस्थान के लिए हिमालय की ओर चले, तो एक-एक करके सभी पृथ्वी पर गिर पड़े। भूमि पर पड़े भीम ने अपने अग्रज युधिष्ठिर से इसका कारण जानना चाहा। युधिष्ठिर ने बताया, 'भ्राता भीम, जिसकी जैसी करनी होती है, जिसे अहंकार हो जाता है, उसे फल तो भोगना ही पड़ता है। अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात होने के कारण द्रौपदी के पुण्य क्षीण हो गए। सहदेव अपने जैसा विद्वान् और बुद्धिमान किसी को नहीं

समझता था। नकुल किसी को भी अपने समान सुंदर नहीं समझता था। अर्जुन को अपनी वीरता का अधिक अभिमान था और भीम, तुम अपना सच भी जान लो। दूसरों को कुछ न समझकर समय-समय पर अपने मुँह से अपने बल की डींग हाँकने के कारण तुम्हारे तमाम पुण्य क्षीण हुए तथा तुम्हारा पतन हुआ।'

भीम अंतिम समय में अपने भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर के मुख से सत्य बातें सुनकर नतमस्तक हो उठे। दो घड़ी तक इंद्र निर्मित माया रूपी नरक में रहने के बाद युधिष्ठिर सहित पांडव स्वर्ग चले गए।

●●●

3.

गरुड़ को उपदेश

एक बार भगवान् श्रीहरि पक्षिराज गरुड़ की जिज्ञासाओं का समाधान कर रहे थे। गरुड़ की मृत्यु के समय की स्थिति की जिज्ञासा का समाधान करते हुए श्रीहरि ने कहा, 'जो लोग सत्य का पालन करते हैं, झूठ नहीं बोलते, काम, ईर्ष्या और द्वेष के कारण स्वधर्म का परित्याग नहीं करते, वे सभी निश्चय ही सुखपूर्वक शरीर का त्याग करते हैं। ऐसे दृढ़ संकल्पवान सदाचारी पुरुषों की आदर्श मृत्यु होती है। जो असत्यवादी, झूठी गवाही देने वाले, विश्वासघाती और धर्म निंदक होते हैं, वे मूर्च्छा रूपी दुःखद मृत्यु को प्राप्त होते हैं।'

भगवान् श्रीहरि कर्म की व्याख्या करते हुए बताते हैं, 'जो कर्म जीवात्मा को बंधन में (मोह-लोभ में) नहीं ले जाता, वही सत्कर्म है। जो विद्या प्राणी को मुक्ति प्रदान करने में समर्थ है, वही विद्या है।'

श्रीहरि गरुड़ को उपदेश देते हुए बताते हैं कि सत्संग और विवेक—ये प्राणी के सार्थक दो नेत्र हैं। सत्संग और विवेक के बिना मानव अंधकार में भटकता रहता है। जो व्यक्ति ज्ञान का झूठा दंभ करके जटाजूट रखकर, मृगचर्म पहनकर अपने को साधु समझता है और यह दावा करता है कि 'मैं ब्रह्म को जानता हूँ'—ऐसे ढोंगी व्यक्ति का कभी संग नहीं करना चाहिए।

अंत समय के कल्याण का साधन बताते हुए भगवान् कहते हैं, 'अंत समय आ जाने पर भयरहित होकर संयम रूपी शस्त्र से देहादि की आसक्ति को काट देने वाला व्यक्ति जीवन-मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है।'

●●●

4.

सत्य-शील पर अटल रहें

महर्षि वेदव्यास को पुराणों में 'जगद्गुरु' कहा गया है, जिनके अनमोल उपदेशों से संसार भर के मानव भक्ति, ज्ञान, सदाचार तथा नीति की प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। महर्षि वेदव्यास ने वेद संहिता का विभाजन तथा महाभारत

जैसे महान् ग्रंथ का सृजन करके धरती पर ज्ञान की भागीरथी प्रवाहित की और असंख्य व्यक्तियों को सदाचार का पालन करने तथा भक्ति, साधना व सद्कर्मों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी।

जगद्गुरु वेदव्यास ने अपने नीति वचनों में सत्य, क्षमा, सरलता, ध्यान, करुणा, हिंसा से दूरी, मन और इंद्रियों पर संयम, सदा प्रसन्न रहने, मधुर बरताव करने और सबके प्रति कोमल भाव रखने जैसे मानव-कल्याण के दस साधन बताए हैं।

वे शिष्यों को प्रेरणा देते हुए कहते हैं, 'सत्य से पवित्र हुई वाणी बोलें तथा मन से जो पवित्र जान पड़े, उसी का आचरण करें। असत्य भाषण, परस्त्री संग, अभक्ष्य (मांस, मदिरा आदि) का भक्षण तथा धर्म के विरुद्ध आचरण करने से कुल का शीघ्र नाश हो जाता है।'

सद्गुरु वेद-व्यासजी के उपदेश में माता-पिता की सेवा, पति की सेवा, सबके प्रति समान भाव, मित्रों से द्रोह न करने तथा भगवान् के भजन को महायज्ञ कहा गया है। व्यासजी के मतानुसार, 'जो लोग दान और सेवा के कार्य में विघ्न डालते हैं, दीन-दुखियों और अनाथों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मूलत: दुष्ट प्रवृत्ति के होते हैं और इस पृथ्वी पर भार हैं।'

●●●

5.

अनूठी सीख

भगवान् बुद्ध एक दिन धर्म का संदेश देते हुए गाँव की ओर जा रहे थे। रास्ते में विश्राम के लिए वे एक सुंदर तालाब के किनारे वृक्ष के नीचे बैठ गए। तालाब में सुंदर कमल के पुष्प खिले थे। विभिन्न रंगों के कमल पुष्पों की अनूठी छटा देखकर वे अभिभूत हो उठे तथा तालाब के जल में उतर पड़े। कमल की अनूठी सुगंध का सेवन कर सुध-बुध खो बैठे। सुगंध से तृप्त होकर जैसे ही वे जलाशय से बाहर निकले कि देवकन्या की वाणी उन्हें सुनाई दी, 'महात्मन्, तुम बिना कुछ दिए इन पुष्पों की सुरभि का सेवन करते रहे। यह चौर-कर्म है।'

तथागत ने ये शब्द सुने, तो हतप्रभ खड़े रहे। अचानक एक व्यक्ति ने तालाब में प्रवेश किया तथा कमल तोड़ने लगा। देवकन्या उसे कमल तोड़ते देखती रही।

तथागत ने कहा, 'देवी, मैंने तो केवल गंध का ही सेवन किया था, पुष्प का स्पर्श भी नहीं किया था, तुमने मुझे चोर कह दिया। यह निर्दयता के साथ फूलों को तोड़कर किनारे फेंक रहा है। तुम इसे क्यों नहीं रोक रही?'

देवकन्या ने कहा, 'भगवन्, सांसारिक मानव अपने लाभ के लिए धर्म-अधर्म में भेद नहीं कर पाता। ऐसा अज्ञानी व्यक्ति क्षम्य है, किंतु जिसका अवतार धर्म प्रचार के लिए हुआ है, उसे तो प्रत्येक कृत्य के उचित-अनुचित का विचार करना चाहिए।'

तथागत समझ गए कि यह देवकन्या साधारण नहीं है। वे श्रद्धा से उसे प्रणाम कर आगे बढ़ गए। उन्होंने शिष्यों से कहा, 'यदि वृक्ष के नीचे पड़े फल को प्राप्त करने की लालसा हो, तो वृक्ष के प्रति आभार व्यक्त करने के बाद ही उसे ग्रहण करना चाहिए।'

●●●

6.

अपनी बलि क्यों नहीं देते?

यूनान के एक प्राचीन मंदिर में प्रतिवर्ष उत्सव का आयोजन किया जाता था। पूरे देश से असंख्य श्रद्धालु इस समारोह में शामिल होते थे। उन दिनों यूनान में प्रमुख दार्शनिक प्लेटो की ख्याति चरम सीमा पर थी। वह आडंबरों से दूर रहकर सात्त्विक जीवन बिताने की प्रेरणा दिया करते थे। लोग उनके पास पहुँचकर धर्म और समाज-संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान पाया करते थे। उत्सव के आयोजकों ने एक बार प्लेटो को भी समारोह में आमंत्रित किया। प्लेटो सहज भाव से महोत्सव में जा पहुँचे।

यूनान में उन दिनों देव प्रतिमा के समक्ष पशुबलि जैसी कुप्रथा प्रचलित थी। प्लेटो ने पहली बार देखा कि अपने को देवता का भक्त बताने वाले एक व्यक्ति ने निरीह पशु को मूर्ति के सामने खड़ा किया और तेज धार वाली तलवार से उसका सिर उड़ा दिया। निरीह पशु को तड़पते देखकर प्लेटो का हृदय हाहाकार कर उठा। वे इस घोर अमानवीय कृत्य को सहन नहीं कर पाए। वे कुरसी से उठे और सीधे मूर्ति के सामने जा पहुँचे। दूसरे पशु की बलि देने को तत्पर अंधविश्वासी व्यक्ति तथा उपस्थित जनों से प्लेटो ने कहा, 'देवता इन निरीह और मूक पशुओं की बलि से यदि प्रसन्न होता है, तो क्यों न आप और हम अपनी बलि देकर देवता को हमेशा के लिए तृप्त कर दें।' उनके ये शब्द सुनकर सब काँप उठे। पशुबलि देने के लिए आया व्यक्ति भाग गया। उसी दिन से वहाँ पशुबलि बंद हो गई।

●●●

7.

अनूठी विनम्रता

लंका में रावण, उसके पुत्रों तथा राक्षस सेना का संहार करने के बाद भगवान श्रीराम ने विभीषण को यह आदेश दिया कि सीताजी को ससम्मान पुष्प वाटिका से ले आओ। विभीषण ने लंका में उपलब्ध सर्वोत्कृष्ट पालकी मँगवाई। राक्षसियों ने सीताजी को स्नान कराया, सुंदर वस्त्र पहनाए, उत्तम आभूषणों से श्रृंगार किया। उन्हें ससम्मान पालकी में बिठाया गया। निभीषण के सेवक राक्षस पालकी को उठाकर श्रीराम के शिविर की ओर चल दिए। पालकी में रेशमी वस्त्रों के आवरण (परदे) लगे थे। जब सीताजी को लिये पालकी हनुमानजी की वानर सेना के निकट पहुँची, तो वानर सैनिक उनके दर्शन के लिए लालायित होकर पालकी के चारों ओर आने लगे। दर्शन के लिए उतावले कुछ वानरों ने पालकी के रेशमी परदों को हटाने का प्रयास किया। पहरेदारों ने अनुशासन बनाए

रखने के उद्‌देश्य से उन्हें दूर जाने तथा बाद में दर्शन करने के लिए कहा।

श्रीराम शिविर के द्‌वार पर खड़े यह दृश्य देख रहे थे। उन्होंने विभीषण से कहा, 'सीताजी की पालकी को आवरण से नहीं घेरा जाना चाहिए था। हनुमान और सुग्रीव की अनुयायी इस वानर सेना ने सीताजी की मुक्ति के लिए लंका तक की लंबी यात्रा की, अनेक कष्ट उठाए। वे उनमें माँ की श्रद्‌धा भावना रखकर दर्शन को उत्सुक हैं। सीताजी को पैदल चलकर इनके बीच आना चाहिए था।'

श्रीराम की बात सुनकर सभी उनकी इस विनम्रता के समक्ष नतमस्तक हो उठे।

●●●

8.

मुनि का विवेक

एक व्याध देविका नदी के तट पर तपस्या कर रहा था। दुर्वासा ऋषि भ्रमण करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देविका में स्नान किया तथा तट पर बैठकर पूजा-अर्चना की। दुर्वासाजी को भूख बहुत सताती थी। उन्होंने व्याध से कहा, 'मुझे जौ, गेहूँ व चावल से बना भोजन उपलब्ध कराओ।'

व्याध के पास कुछ नहीं था। वह दुर्वासाजी के क्रोध से परिचित था। वह चिंतित हो उठा कि भोजन कैसे उपलब्ध कराए। वह उठा और वन में जाकर वनदेवियों से शुद्‌ध आहार तैयार कराकर ले आया। उसने श्रद्‌धा भाव से दुर्वासाजी को भोजन कराया।

दुर्वासा ऋषि ने तृप्त होकर वर दिया, 'तुम 'सत्यतपा ऋषि' के नाम से ख्याति प्राप्त करोगे। इंद्र व विष्णु भी तुम्हारी परीक्षा लें, तब भी तुम सत्य पर अडिग रहोगे।'

एक दिन सत्यतपा ऋषि वन में बैठे थे। अचानक एक वराह सामने से गुजरा और ओझल हो गया। पीछे-पीछे शिकारी पहुँच गया। उसने मुनि से पूछा, 'क्या तुमने वराह को जाते देखा है?'

मुनि ने सोचा कि यदि वह सच बताता है, तो शिकारी वराह को मार देगा। यदि नहीं बताता, तो शिकारी का परिवार भूखा रह जाएगा। मुनि ने कहा, 'वराह को आँखों ने देखा है, पर वे बोल नहीं सकतीं। जिह्वा बोल सकती है, किंतु उसने वराह को देखा नहीं।'

तभी मुनि ने देखा कि सामने शिकारी की जगह विष्णु और इंद्र खड़े हैं। उन्होंने कहा, 'मुनिवर, वास्तव में तुम सत्य-असत्य के रहस्य व उसके परिणाम को समझते हो। सत्य बोलते समय उसका परिणाम क्या होगा, यह विवेक ही उचित निर्णय ले सकता है।' सत्यतपा मुनि को वर देकर दोनों लौट गए।

●●●

9.

माँ की उपेक्षा का कुपरिणाम

ब्राह्मण कुल में जन्मे अंगिरस ऋषियों के सत्संग में लगे रहते थे। उन्हें लगा कि सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर तपस्या करने से ही जीवन सार्थक होगा। उन्होंने गुरु से आज्ञा ली तथा वन में घोर तपस्या करने का निर्णय लिया। वृद्धा माँ उन्हीं के सहारे दिन काट रही थी। अंगिरस ने सोचा कि यदि माँ से आज्ञा लेने का प्रयास किया, तो वह नहीं जाने देगी। वह एक दिन माँ को सोता छोड़कर घर से निकल गए।

माँ की हालत दयनीय होने लगी। एक दिन दु:खी माँ के मुँह से निकला, 'अंगिरस, मुझ वृद्धा माँ को इस हालत में भूखा-प्यासा छोड़कर जाने के कारण तेरी तपस्या कभी सफल नहीं होगी।'

अंगिरस तपस्या में बैठते, तो उन्हें किसी वृद्धा की दर्दभरी चीत्कार सुनाई देती। उनका मन चाहकर भी तपस्या में नहीं लग पाया। वे पहले से कहीं ज्यादा असंतुष्ट रहने लगे।

एक दिन अंगिरस ऋषि अगस्त्य के पास पहुँचे। उन्होंने कहा, 'ऋषिवर, मैं जब भी तपस्या में बैठता हूँ, तो किसी वृद्धा की चीत्कार मन को विचलित कर डालती है।'

ऋषि ने पूछा, 'क्या तुमने अपनी माँ से तपस्या की आज्ञा ली थी?'

उन्होंने कहा, 'मैं चुपचाप घर त्यागकर वन आ गया था।'

ऋषि अगस्त्य ने कहा, 'धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि माँ की सेवा ही सर्वोच्च धर्म है। तुमने वृद्धा माँ की अवहेलना कर अधर्म किया है। इसलिए तपस्या सफल नहीं हुई।'

अंगिरस ने अगस्त्यजी के आदेश पर घर लौटकर माँ से क्षमा माँगी। उन्हें प्रसन्न करने के बाद ही अंगिरस ने तपस्या कर सिद्धि प्राप्त की।

●●●

10.

सुमिरन से कल्याण

गुरु नानकदेवजी अपने पास सत्संग के लिए आने वालों से अकसर कहा करते, 'किरत करो, नाम जपो और वंड छको'—शुभ कर्म करो, प्रभु सुमिरन करो एवं जो मिले, उसे बाँटकर खाओ। वे सदाचार पर बहुत बल दिया करते थे।

एक दिन एक धनी व्यक्ति गुरुजी के दर्शन के लिए पहुँचा। गुरु नानकदेवजी के चरणों में बैठकर उसने श्रद्धापूर्वक उनका उपदेश सुना। गुरुजी सिख संगत को प्रेरणा देते हुए कह रहे थे कि जो व्यक्ति धनाढ्य होते हुए भी किसी अभावग्रस्त, दु:खी इनसान की सहायता नहीं करता, उसे कालदूतों का उत्पीड़न सहना पड़ता है। जो सेवा और सहायता में धन लगाता है, सत्कर्म करता है, उसे इस लोक में तो ख्याति मिलती ही है, परमात्मा की भी कृपा प्राप्त होती है।

कालदूतों द्वारा उत्पीड़न किए जाने की कहानी सुनकर वह व्यक्ति काँप उठा। सत्संग के बाद वह गुरुजी के चरण पकड़कर बोला, 'मैं क्षत्रिय हूँ। धनी हूँ। कंजूस होने के कारण धन संचय में लगा रहता हूँ। मेरे कल्याण का सहज समाधान बताने की कृपा करें।'

गुरु नानकदेवजी ने कहा, 'यदि सच्ची शांति और कल्याण चाहते हो, तो अपना धन सेवा, परोपकार जैसे सत्कर्मों में लगाओ। कुआँ खुदवाओ, लंगर लगाओ, अतिथियों की सेवा करो। ईश्वर का हर समय सुमिरन करते रहो। यह लक्ष्मी मोहिनी है, छल रूप है। यह उसी का कल्याण करती है, जो सदाचारी और परोपकारी होता है।'

धनिक ने उसी दिन से खुले हाथों से धन का सदुपयोग करना शुरू कर दिया।

●●●

11.

ज्ञानी की आयु नहीं देखी जाती

एक क्षेत्र में अनेक वर्षों से बारिश नहीं हो रही थी। अकाल पड़ गया। लोग जब भूखे मरने लगे, तो उस क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र जाने लगे। युवा मुनि सारस्वत सरस्वती नदी के अनन्य आराधक थे। उन्होंने प्रार्थना की कि अकाल पीड़ितों को संकट से उबारने के लिए कुछ कीजिए। सरस्वती ने कहा, 'तुम निश्चिंत होकर मेरे तट पर वेदों का स्वाध्याय करो। मैं संकट हरने का प्रयास करूँगी।'

सारस्वत मुनि ने तट को वेदों की पवित्र ऋचाओं से गुंजायमान कर दिया। सरस्वती नदी ने खेत-खलिहानों को जल से सराबोर कर दिया। खूब अनाज-फल पैदा होने लगे।

आस-पास के ऋषियों को पता चल गया कि मुनि सारस्वत के वेदों के स्वाध्याय और तप के कारण अकाल दूर हुआ है। वे सारस्वत मुनि के दर्शन के लिए पहुँचे और उनसे विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि हमें वेदों का अध्ययन कराने की कृपा करें।

मुनि ने कहा, 'मैं धर्मशास्त्रों के नियमानुसार केवल शिष्यों को ही अध्ययन कराता हूँ।'

ऋषि आयु में मुनि से बड़े थे, जबकि सारस्वत किशोर ही थे। ऋषियों ने कहा, 'तुम हमारे सामने बालक समान हो। हम तुम्हारे शिष्य कैसे बन सकते हैं?'

सारस्वत मुनि विनम्रता से बोले, 'मैंने संकल्प लिया है कि केवल शिष्य को ही अध्ययन कराऊँगा। मैं अपना संकल्प तोड़कर अधर्म का पाप क्यों मोल लूँ?'

एक वृद्ध ऋषि ने कहा, 'ज्ञानी और तपस्वी की आयु नहीं देखी जाती। जो अधिक ज्ञानी होता है, वह कम आयु का होने पर भी गुरु समान होता है।'

ऋषियों ने शिष्य बनकर उनसे वेदों का अध्ययन किया।

●●●

12.

क्षमा माँगो

एक बार प्रह्लाद दानवों के साथ नैमिषारण्य तीर्थ पहुँचे। उन्होंने अनेक ऋषियों के दर्शन कर उनका आशीर्वाद लिया। तीर्थ में भ्रमण करते हुए विशाल शाखाओं से घिरे एक वृक्ष के नीचे पहुँचे। वे वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए बैठ गए। अचानक उनकी दृष्टि वृक्ष की शाखाओं पर गई। शाखाएँ बाणों से बिंधी हुई थीं। उन्हें यह देखकर क्रोध आया कि किसी ने वृक्ष की इन हरी-भरी शाखाओं को भी बाणों का निशाना बनाकर पाप किया है। उनकी दृष्टि बाईं ओर गई, तो दो मुनि तपस्या में लीन थे। उनके पास ही धनुष-बाण रखे थे।

प्रह्लाद ने समझा कि मुनि वेशधारी ये दोनों दुष्ट प्रवृत्ति के हैं तथा अहंकार से ग्रस्त होकर उन्होंने वृक्ष की शाखाओं का बाणों से विनाश किया है। उन्होंने बल के अहंकार में दोनों को युद्ध करने की चुनौती दे दी। वे मुनि प्रह्लाद के साथ युद्ध करने लगे। दोनों मुनियों ने प्रह्लाद के वारों को विफल कर डाला। निराश होकर प्रह्लाद ने भगवान् विष्णु की स्तुति की। भगवान् विष्णु ने प्रकट होकर कहा, 'प्रह्लाद, ये दोनों मुनि साक्षात नर-नारायण हैं। इन्हें कोई भी नहीं जीत सकता। नर-नारायण को चुनौती देकर तुमने भारी भूल की है। तुम्हारी भलाई इसी में है कि अभी आराधना कर उन्हें प्रसन्न करो।'

प्रह्लाद का बलशाली होने का अहंकार चूर-चूर हो गया। वह हिरण्याक्ष के पुत्र अंधक को राज्य सौंपकर बद्रीनाथ चले गए। वहाँ उन्होंने नर-नारायण की स्तुति कर उनसे क्षमा माँगी।

●●●

13.

अहंकार से पतन

श्वेतकेतु ऋषि आरुणि का पुत्र था। आरुणि ने उसे घर में ही प्रारंभिक शिक्षा और संस्कार दिए। कुछ बड़ा होने पर उन्होंने श्वेतकेतु से कहा, 'कुल की परंपरा के अनुरूप गुरुकुल में रहकर साधना और धर्मशास्त्रों का अध्ययन करना। गुरुकुल में ही तुम्हारा उपनयन संस्कार होगा। गुरु की सेवा और सान्निध्य से ही तुम विभिन्न उपनिषदों और वेदों में पारंगत हो सकोगे।'

श्वेतकेतु पिता का आदेश मानकर गुरुकुल में जाकर गुरु की सेवा में लग गया। चौबीस वर्ष की आयु पूरी होने पर वह घर लौटा। उसे यह झूठा अभिमान हो गया कि वेदों का उससे बड़ा कोई दूसरा व्याख्याता नहीं है और वह शास्त्रार्थ में सभी को पराजित कर सकता है। वह अपने को पिता से भी बड़ा विद्वान् मानने लगा। पिता ने पुत्र के अभिमानी और उद्दंडी स्वभाव को सहज ही भाँप लिया। वे जान गए कि इसका अमर्यादित स्वभाव और अहंकार इसके पतन का कारण बनेगा। एक दिन पिता आरुणि ने एकांत पाकर पुत्र से धर्मशास्त्र व आत्मा संबंधी कुछ प्रश्न पूछे, लेकिन वह किसी का भी उपयुक्त उत्तर नहीं दे पाया।

आरुणि ने कहा, 'पुत्र, तुम्हारे गुरु महान् पंडित व साधक हैं। लगता है, अहंकारग्रस्त होने के कारण तुम उनसे कुछ प्राप्त नहीं कर पाए। गुरु से कुछ पाने के लिए विनयशील होना आवश्यक है। अनजान और मासूम बनकर ही गुरु से कुछ सीखा जा सकता है।'

श्वेतकेतु का अहंकार चूर-चूर हो गया। पिता आरुणि ने उसे शास्त्रों का दृष्टांत देकर अमरत्व का सार बताया।

•••

14.

क्रोध अधर्म है

निमि इक्ष्वाकु के पुत्र थे। वे परम धर्मात्मा थे तथा विधि-विधान के अनुसार यज्ञ कराने में पारंगत थे। अपने कल्याण के लिए वे समय-समय पर अपने पुरोहित वशिष्ठजी से यज्ञ कराते रहते थे। एक बार निमि ने वशिष्ठजी से यज्ञ कराने का अनुरोध किया। इसी बीच इंद्र ने उनको यज्ञ कराने के लिए बुला भेजा। वशिष्ठ निमि के यज्ञ की जगह इंद्र का यज्ञ कराने चले गए। वशिष्ठ के नहीं रहने पर निमि ने ऋषि गौतम को आमंत्रित कर यज्ञ करा लिया। वशिष्ठ इंद्रलोक से लौटे तथा यह पता चलने पर कि निमि ने दूसरे ऋषि से यज्ञ करा लिया है, वे क्रोध से भर उठे और निमि को मृत्यु का श्राप दे दिया। तत्काल निमि की मृत्यु हो गई।

अन्य मुनियों को यह बहुत बुरा लगा कि वशिष्ठ ने शास्त्र-मर्यादा का पालन नहीं किया और अपने ही शिष्य को श्राप दे दिया। मुनिगण यह भी जानते थे कि निमि पग-पग पर धर्म के नियमों का दृढ़ता से पालन करते थे। मुनियों के आग्रह करने पर देवताओं ने निमि को जीवित हो जाने का वरदान दिया, लेकिन निमि ने देवताओं से विनम्रतापूर्वक कहा, 'वशिष्ठ मेरे पुरोहित हैं। मैं उनके श्राप को स्वीकार कर अब जीवित नहीं होना चाहता।'

वशिष्ठजी को इसका पता चला कि वरदान मिलने के बावजूद निमि ने जीवित होने से इनकार कर दिया है, तो वे द्रवित हो उठे। उन्हें लगा, जैसे भगवान् कह रहे हों कि क्रोध पर नियंत्रण रखकर धैर्य का परिचय देना ही ऋषि-मुनियों का सच्चा कर्तव्य है। क्रोध में श्राप देकर तुमने अधर्म ही किया है।

•••

15.

माँ की सेवा का फल

हजरत मूसा हर पल खुदा की याद में डूबे रहते थे। उन्हें खुदा के नूर की अनुभूतिहर क्षण होती रहती थी। एक दिन इबादत के समय उन्होंने खुदा से पूछा, 'परवरदिगार, क्या आप जन्नत में मेरे पास जगह लेने वाले का नाम बताएँगे?'

खुदा ने कहा, 'मूसा, तेरा पड़ोसी जन्नत में भी तेरा पड़ोसी रहेगा।' मूसा यह सुनकर हतप्रभ रह गए। उनका पड़ोसी मैले-कुचैले कपड़े पहने पेड़ के नीचे बैठा जूते तैयार करता था। मूसा ने कभी उसे मसजिद जाते या नमाज पढ़ते नहीं देखा था। उन्होंने सोचा कि जब खुदा यह कह रहे हैं, तो उसमें कुछ खास बात तो होगी ही। वे उससे मिलने उसकी झोंपड़ी में जा पहुँचे। जूते गाँठने वाला व्यक्ति अपना सामान समेटकर झोंपड़ी में घुस ही रहा था।

उसने हजरत मूसा को देखा, तो अभिवादन कर विनम्र होकर बोला, 'आप मेरे गरीबखाने पर पधारे, मैं आपका शुक्रगुजार हूँ। आप कुछ देर बैठिए। मैं अभी आपकी खिदमत में हाजिर होता हूँ।' इतना कहकर वह झोंपड़ी में घुस गया। जब बहुत देर हो गई, तो उन्होंने झाँककर देखा कि वह व्यक्ति बिस्तर पर पड़ी जर्जर शरीर वाली वृद्धा माँ को रूई के फाहे से दूध पिला रहा है। दूध पीते-पीते माँ को झपकी आने लगी, तब उसने माँ के पाँव दबाने शुरू कर दिए। हजरत मूसा यह दृश्य देखते ही समझ गए कि खुदा उससे माँ की अनूठी सेवा के कारण खुश हैं।

हजरत दरवाजा खोलकर अंदर पहुँच गए। वृद्धा माँ के पैरों में सिर रखकर बोले, 'माँ, तेरी सेवा ने तेरे बेटे को जन्नत का हकदार बना दिया है।'

●●●

16.

सच्चा विवेकी शिष्य

बोधिसत्व वाराणसी में ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। बड़े हुए तो शिक्षा व शास्त्रों में पारंगत एक आचार्य के आश्रम में अध्ययन करने लगे। आचार्य विरक्त किस्म के तपस्वी थे। छात्रों को सदाचारी बनने, कभी झूठ न बोलने, सत्य पर दृढ़ रहने के संस्कार भी देते थे। आचार्य की पुत्री विवाह योग्य हुई, तो उन्होंने सोचा कि आश्रम के विद्यार्थियों के शील की परीक्षा करके जो विवेकी होगा, उसी से पुत्री का विवाह करूँगा। आचार्य ने कुछ मेधावी विद्यार्थियों को पास बुलाया। उनसे कहा, 'मैं अपनी पुत्री के विवाह के लिए सुयोग्य वर का चयन करना चाहता हूँ। शर्त यह है कि जो अपने संबंधियों की आँख बचाकर वस्त्र व अलंकार लाएगा, उसी से मैं अपनी पुत्री का विवाह करूँगा।'

छात्र अपने-अपने घर चले गए। आचार्य की सुंदर और बुद्धिमान पुत्री के प्रति सभी आकर्षित थे। नियत समय तक सभी अपने-अपने घरों से आभूषण आदि चुराकर ले आए, लेकिन बोधिसत्व खाली हाथ लौटे।

आचार्य ने पूछा, 'बोधिसत्व, तुम कुछ क्यों नहीं ला पाए?'

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, 'आचार्यश्री, आपने कहा था कि चोरी-छिपे लाना, ताकि कोई देख न पाए और जब मैं पापमय कार्य करने को प्रवृत्त होता, तो लगता कि कोई-न-कोई देख रहा है। जहाँ कोई नहीं दिखता, वहाँ मैं स्वयं तो होता ही हूँ।'

आचार्य समझ गए कि बोधिसत्व ही सच्चा विवेकी है, जो हर जगह किसी का अस्तित्व देखता है। उन्होंने अपनी पुत्री का उसी से विवाह कर दिया और अन्य छात्रों द्वारा लाए गए वस्त्र-आभूषण उन्हें वापस कर दिए।

●●●

17.

सेवा का सुफल

कैकेय देश के राजा सहस्रचित्य परम प्रतापी तथा धर्मपरायण थे। वे प्रजा के कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहते थे। मूक पशु-पक्षियों में भी वे अपने इष्टदेव के दर्शन करते थे। वे सुबह का समय भगवान् के भजन और शास्त्रों के अध्ययन में बिताते थे। दोपहर से शाम तक राज-काज देखते थे और शाम होते ही वेश बदलकर प्रजा की सेवा के लिए निकल जाते थे। वे अपने हाथों से बीमारों और वृद्धों की सेवा करते थे। गौशाला पहुँचकर गाय-बैलों को हरा चारा खिलाते और बीमार गायों की खुद सेवा करते थे। सेवा के कारण उनके पुण्यों में वृद्धि होती गई। राजभवन के किसी भी व्यक्ति को यह पता नहीं लग पाता था कि राजा स्वयं प्रतिदिन सेवा और परोपकार कर पुण्य अर्जित कर रहे हैं।

एक दिन अनजाने में हुए किसी पाप से राजा सहस्रचित्य उद्वेलित हो उठे। वे वृद्धावस्था के रोगों से भी ग्रसित थे। अचानक पुत्र को राज्य का भार सौंपकर वे जंगल में चले गए। अनजाने में हुए पाप के प्रायश्चित्त के लिए उन्होंने कठोर तपस्या शुरू कर दी।

एक दिन देवदूत ने प्रकट होकर उनसे कहा, 'राजन्, तुमने जीवन भर प्रजा, मरीजों, वृद्धों और गायों की सेवा की है। जो राजा अपनी प्रजा के कल्याण को भगवान् की पूजा मानता है, उसके पुण्य उसे स्वर्गलोक का अधिकारी बना देते हैं। अनजाने में हुआ पाप उसी समय भस्म हो गया, जब तुमने प्रायश्चित्त कर लिया।' राजा सहस्रचित्य जीवन-मरण के बंधन से मुक्त हो गए।

●●●

18.

आत्मचिंतन से ही कल्याण

सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार—ये चारों मुनि सनकादिक के नाम से विख्यात हुए। वे ब्रह्मा के मानसपुत्र थे। परम विरक्त होने के कारण देवता भी सनकादिक का बहुत आदर करते थे। अत्यंत ज्ञानी होने के बावजूद वे समय-समय पर ब्रह्माजी आदि का सत्संग कर उनसे और अधिक ज्ञान प्राप्त करने को तत्पर रहा करते थे।

एक दिन सनकादिकों ने संशयवश अपने पिता ब्रह्माजी से प्रश्न किया, 'सांसारिक विषय विपत्तियों के घर हैं। सांसारिक ऐश्वर्य और भोग-विलास मानव की अशांति व पतन के कारण हैं। यह जानते हुए भी मानव पशु के समान उनके भोग में क्यों लिप्त रहता है? उसे सांसारिक लगाव से मुक्त करने का क्या उपाय हो सकता है?'

ब्रह्माजी अचानक किए गए इस प्रश्न का उपयुक्त उत्तर नहीं दे पाए। उन्होंने भगवान् विष्णु का स्मरण कर उनसे सनकादिकों की जिज्ञासा का समाधान करने की प्रार्थना की। श्रीविष्णु ने हंस के रूप में प्रकट होकर सनकादिकों की जिज्ञासा का विस्तार से समाधान करने के लिए कई कथाएँ सुनाईं। उन्होंने बताया कि इंद्रियों के विषयों का चिंतन व विषयों में आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिए। शरीर क्षणभंगुर है, उसे महत्त्व न देकर

आत्मचिंतन करने में ही कल्याण है। भगवान् का चिंतन करते रहने से ही सांसारिक मोह-ममता से बचा जा सकता है।

सनकादिक ने उनसे प्राप्त आत्मज्ञान के माध्यम से असंख्य जीवों को सत्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

●●●

19.

धर्म का परित्याग न करें

महात्मा विदुर ने धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। शास्त्रनिष्ठ होने के कारण ही विदुर सदैव निर्भय रहते थे। वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जो समय-समय पर धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन को चेतावनी देते रहते थे कि यदि वे न्याय के पथ पर नहीं चले, तो सर्वनाश होगा।

एक बार महाराज धृतराष्ट्र के प्रश्नों का उत्तर देते हुए विदुरजी ने कहा, 'धर्म का आचरण सर्वोपरि महत्त्व रखता है। राजा के लिए यही उचित है कि वह धर्म से राज्य प्राप्त करे और धर्म से ही उसकी रक्षा करे। धर्मात्मा राजा को जहाँ प्रजा की सहानुभूति मिलती रहती है, वहीं लक्ष्मी सदैव उसके साथ रहकर राज्य को सुखी, समृद्ध व संपन्न बनाए रखती है।'

विदुरजी ने आगे कहा, 'कामना, भय, लोभ अथवा अपने जीवन के लिए भी धर्म का परित्याग न करें। इसका कारण यह है कि धर्म नित्य है, जबकि सुख-दु:ख अनित्य। धर्म ही संतोष पैदा करने की प्रेरणा देता है। इसलिए मनुष्य को सदैव संतोष धारण करना चाहिए, क्योंकि संतोष ही सबसे बड़ा लाभ है।'

विदुरजी दुर्योधन की स्त्री संबंधी दुष्प्रवृत्ति को जानते थे, इसलिए उन्होंने धृतराष्ट्र को उपदेश देते हुए कहा, 'स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी होती हैं। वे पूजनीय हैं। वे अत्यंत भाग्यशालिनी और पुण्यशीला हैं। उनसे घर की शोभा में वृद्धि होती है। अत: वे विशेष सम्मान व रक्षा के योग्य हैं।'

विदुरजी द्वारा धृतराष्ट्र को दिए गए उपदेश आगे चलकर 'विदुर नीति' के नाम से विख्यात हुए।

●●●

20.

अनूठी सदाशयता

भगवान् श्रीराम को माता कैकेयी के दुराग्रह के कारण ही पिता दशरथ के आदेश पर वन जाना पड़ा था। कैकेयी के आचरण से आहत भरतजी ने अपनी माँ के प्रति अनेक बार दुर्वचनों का प्रयोग किया, किंतु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने एक पल के लिए भी कैकेयी के प्रति मन में दुर्भावना नहीं आने दी।

श्रीराम चौदह वर्ष के वनवास की अवधि पूरी कर अयोध्या लौटे, तो कैकेयी को आशंका थी कि श्रीराम उनकी

उपेक्षा कर नाराजगी प्रकट करेंगे, किंतु श्रीराम सबसे पहले माँ कैकेयी के महल में पहुँचे। उन्होंने चरण स्पर्श करने के बाद कहा, 'माता, मैं आपका बहुत आभारी हूँ। यदि आप वन में न भेजतीं, तो प्रजा को यह पता ही नहीं चलता कि हमारे पिता कितने पुत्र स्नेही थे। हम चारों भाई पिता के कैसे आज्ञापालक हैं और भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न कैसे मेरे आज्ञापालक आदर्श बंधु हैं। अगर मुझे वन न भेजा जाता, तो मेरी भेंट हनुमानजी जैसे महावीर व सर्वगुणसंपन्न भक्त से कदापि न हो पाती। मैं सुग्रीव जैसे सखा से नहीं मिल पाता और विभीषण जैसा सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण सहयोगी कैसे पाता! फिर सीता की सेवा व सहयोग भावना को भी मैं प्रत्यक्ष कैसे देख पाता।'

श्रीराम ने आगे कहा, 'माता, आपने अपने ऊपर कलंक लेकर मुझे पग-पग पर लाभान्वित किया। आप परम धन्य हैं, यशस्विनी हैं।'

श्रीराम के मुख से अपना यशोगान सुनकर कैकेयी की आँखों से अश्रु टपक पड़े।

●●●

21.

देवी का वरदान

सुरथ धर्मपरायण तथा दानशील राजा थे। अधर्मी उनकी धर्मपरायणता से चिढ़ते थे। एक बार उन्होंने सुरथ पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया। सुरथ वन में मुनि सुमेधा के आश्रम में पहुँच गए। राजा ने उन्हें अपनी कहानी सुनाई। मुनि ने उन्हें धैर्य रखने का सुझाव देते हुए कहा, 'वन में रहकर अच्छा समय आने की प्रतीक्षा करो। देवी की आराधना के बल पर तुम्हारा कल्याण होगा।'

उन्हीं दिनों समाधि नामक परम धर्मात्मा और संतोषी वैश्य अपने दुर्व्यसनी पुत्र से प्रताड़ित होकर वन में आया। राजा सुरथ से उसकी भेंट हो गई। संकटग्रस्त होने के कारण दोनों मित्र बन गए। सुमेधा मुनि द्वारा बताई गई विधि के अनुसार दोनों जगदंबा देवी की उपासना में लग गए। सुरथ और समाधि ने निर्णय लिया कि यदि देवी प्रसन्न नहीं हुईं, तो वे अग्निकुंड में अपना शरीर अर्पित कर देंगे। जैसे ही यज्ञ की अग्नि में वे शरीर की आहुति देने को उद्यत हुए कि देवी ने प्रकट होकर कहा, 'शरीर बड़े भाग्य से सत्कर्मों के लिए मिलता है। इसे इस तरह नष्ट नहीं करना चाहिए।' देवी ने प्रसन्न होकर राजा सुरथ को पुन: राजा बनने का वरदान दिया, फिर देवी ने समाधि को भी कुछ माँगने को कहा।

समाधि ने हाथ जोड़कर कहा, 'अब मुझे न घर लौटने की इच्छा है, न धन की। मुझे मोक्ष देने वाला दिव्य ज्ञान प्रदान करें।'

देवी ने कहा, 'तुम वास्तव में संसार की असारता को जान गए हो। तुम्हें ज्ञान प्राप्त हो चुका है।' देखते-देखते देवी अंतर्ध्यान हो गईं।

●●●

22.

मोक्ष के अधिकारी

जनकवंशी जनदेव मिथिला के राजा थे। वे विद्‌वान् आचार्यों से उपदेश ग्रहण कर उनका पालन करने का प्रयास किया करते थे। वे प्रजा के दु:ख दूर करने में हर समय तत्पर रहते थे। एक बार कपिला के पुत्र महामुनि पंचशिख भ्रमण करते हुए मिथिला पहुँचे। महामुनि की विरक्ति, तपस्या और ज्ञान देखकर राजा जनदेव बहुत प्रभावित हुए।

मुनि पंचशिख भी राजा की श्रद्‌धा, भक्ति भावना के कायल हो गए। मुनि ने उन्हें योग्य अधिकारी समझकर मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हुए बताया, 'संसार को स्वप्नवत मानना चाहिए। किसी भी सांसारिक दु:ख-सुख में समान रहना चाहिए। सच्चा सुख भगवान् की भक्ति से ही मिलता है।'

राजा ने मुनि के उपदेश का पालन करने का संकल्प लिया। वे निष्काम भाव से प्रजा के हित तथा आत्मज्ञान में प्रवृत्त रहने लगे।

भगवान् विष्णु तक राजा जनदेव की निष्काम भक्ति और विरक्ति भावना की ख्याति पहुँची। उन्होंने परीक्षा लेने के लिए ब्राह्मण का रूप धारण किया तथा मिथिला जा पहुँचे। उन्होंने कोई अमर्यादित कार्य कर दिया।

जनदेव ने कहा, 'तुम ब्राह्मण हो। मैं ब्राह्मण को दंड नहीं देता। तुम मेरे राज्य की सीमा से बाहर चले जाओ।'

ब्राह्मण ने क्रोध में आकर एक भवन में आग लगा दी।

राजा आग देखकर विचलित नहीं हुए और बोले, 'भवन के जलने से मुझे तनिक भी दु:ख नहीं हुआ है।'

उसी समय ब्राह्मण की जगह विष्णु भगवान् खड़े थे। वे बोले, 'तुम वास्तव में आत्म कल्याण को प्राप्त कर चुके हो और मोक्ष के अधिकारी हो।'

●●●

23.

अनूठी उदारता

भगवान् श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। अश्व का विधिवत पूजन करने के बाद उन्होंने अपने भ्राता शत्रुघ्न को सदल-बल अश्व के साथ रवाना कर दिया। भरतजी को देश-भर से यज्ञ में भाग लेने आने वाले अतिथियों के स्वागत-सत्कार का दायित्व सौंपा गया।

श्रीराम ने अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मण से कहा, 'भैया, इस यज्ञ में आए हुए समस्त ऋषि-मुनि, संन्यासी-ब्राह्मण, राजागण, गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि को पूर्ण संतुष्ट रखने का दायित्व तुम्हारा है। हमारे इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण यज्ञ में सभी वर्णों के लोग उपस्थित रहेंगे। यज्ञ का आयोजक होने के नाते हमारे परिवार का यह दायित्व है कि सभी को सेवा के माध्यम से प्रसन्न और संतुष्ट रखा जाए। इसलिए जो भी अभ्यागत जो-जो कामना करें, वे जो-जो चाहें, तुम उन्हें वह सब मुझसे बिना पूछे ही दे देना। किसी को निराश नहीं करना। यज्ञ का एक उद्‌देश्य यह भी होता है कि प्रजा के तमाम लोग पूर्ण तृप्त और संतुष्ट हों।'

कुछ क्षण रुककर श्रीराम ने कहा, 'यदि कोई तुमसे अयोध्या भी माँग ले, कामधेनु की इच्छा करे, मणि-

माणिक्य की अभिलाषा व्यक्त करे, तो भी उसे निराश करने की आवश्यकता नहीं है।'

श्रीलक्ष्मणजी श्रीराम की उदारता देखकर हतप्रभ हो गए। भरत तथा लक्ष्मणजी ने यज्ञ में उपस्थित सभी अतिथियों की ऐसी सेवा की कि प्रत्येक व्यक्ति वहाँ से पूर्ण संतुष्ट होकर लौटा।

●●●

24.

बराबर चलते रहो

सत्यवादी हरिश्चंद्र के पुत्र रोहित पिता की तरह धर्म तथा सत्य पर हमेशा अटल रहे। देवराज इंद्र भी बालक रोहित के सद्गुणों से प्रभावित हुए। देवराज ने रोहित को पाँच वर्ष तक अपने उपदेशों में अनेक दृष्टांत देकर सदा कर्म करते रहने, आगे बढ़ने और धर्मानुसार आचरण करने की प्रेरणा दी।

देवराज इंद्र ने रोहित से कहा, 'श्रम से जो नहीं थका, ऐसे पुरुष को ही लक्ष्मी मिलती है। निराश होकर, आलसी बनकर बैठे व्यक्ति को पाप धर दबोचता है। जो चलता रहता है, उसके पाप थककर सोए रहते हैं। जो निरंतर चलता रहता है, देवगण उसी पर कृपा करते हैं। इसलिए चलते रहो—चलते रहो।'

इंद्र दूसरे श्लोक में कहते हैं, 'बैठे हुए (निराश) व्यक्ति का सौभाग्य बैठा रहता है। खड़े होकर साहस के साथ चलने वाले का सौभाग्य आगे-आगे चलने लगता है। इसलिए चलते रहो—चलते रहो।'

आगे वे कहते हैं, 'रोहित, सोने वाले का नाम कलि है। अंगड़ाई लेने वाला द्वापर है। उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सतयुगी है। चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है, चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। इसलिए 'चरैवेति' अर्थात् चलते रहो—चलते रहो।'

उपनिषद् में प्रस्तुत देवराज इंद्र द्वारा रोहित को दिए गए उपदेशों में पाँचों श्लोकों का अंतिम शब्द 'चरैवेति' दिया गया है। उनके उपदेशों का सार है, निरंतर कर्म में तत्पर रहकर आगे बढ़ते रहनेवाला व्यक्ति ही सफलता प्राप्त करता है।

●●●

25.

प्रजा का कल्याण करो

चाणक्य नीतिज्ञ और विद्वान् होने के साथ-साथ परम तपस्वी एवं विरक्त भी थे। मगध का राजा घनानंद लोभी, अहंकारी और अत्याचारी था। चाणक्य के संसर्ग में आने के बाद घनानंद ने प्रजाजनों का उत्पीड़न बंद कर दिया। वह गरीबों व अपाहिजों को दान भी देने लगा।

एक दिन राजा घनानंद ने दरबार में चाणक्य से कह दिया, 'जितनी तुम्हारी प्रतिभा है, यदि रूप भी उतना ही

सुंदर होता, तो कुछ अलग बात होती।'

चाणक्य स्वाभिमानी थे। भरे दरबार में अपने अपमान से आहत होकर उन्होंने कहा, 'राजन्, मैं इस अपमान का बदला लेकर ही चैन से बैठूँगा।'

अचानक एक दिन चाणक्य की चंद्रगुप्त से भेंट हो गई। वे उनके साहस व गुणों से प्रभावित हुए। उन्होंने चंद्रगुप्त को प्रेरणा देकर बुद्‍धि कौशल से राजा घनानंद को पराजित करा दिया और उसे मगध का राजा बना दिया।

चाणक्य ने राजा चंद्रगुप्त को पहला उपदेश देते हुए कहा, 'राजा का उद्‍देश्य प्रजा का कल्याण होना चाहिए। राजा को प्रजा के सुख के सामने अपने सुख की परवाह नहीं करनी चाहिए।'

●●●

26.

स्त्री को हीन न मानो

धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों से अकसर कहा करते थे कि अपने को बड़ा मानने के भ्रम और अहंकार के कारण मानव का पतन अवश्य होता है। अत: हमेशा विनम्रता का व्यवहार करना चाहिए।

एक बार धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ वन जा रहे थे। वन में उन्हें जहाँ कहीं मुनियों का आश्रम दिखाई देता, वे सिर झुकाकर प्रणाम करते। समय मिलते ही आश्रम के अंदर जाकर मुनियों का सत्संग कर उनका उपदेश ग्रहण करते। वन में चलते-चलते उन्हें देवी का मंदिर दिखाई दिया। उन्होंने रुककर देवी की स्तुति की। झुककर सिर नवाया।

भीम के मन में उस दिन न जाने कैसे दूषित भाव उत्पन्न हो गए। भीम ने कहा, 'तुम एक स्त्री की पूजा क्यों करते हो?'

धर्मराज ने कहा, 'देवी महामाया हैं, आदिशक्ति हैं। देवी की कृपा के बिना कभी किसी का उद्‍धार नहीं हो सकता।'

भीम चुप हो गए। कुछ दूर आगे बढ़े थे कि उन्हें चक्कर आने लगा। भीम ने कहा, 'मेरी आँखों के आगे अंधकार छा गया है। कुछ दिखाई नहीं दे रहा।' युधिष्ठिर ने कहा, 'देवी की प्रार्थना करो, तभी तुम ठीक हो सकते हो।'

अचानक देवी प्रकट हो गईं। वे बोलीं, 'मैं इस कारण आई हूँ कि तुम सब जिन श्रीकृष्ण के भक्त हो, मैं भी उनकी आराधना करती हूँ। धर्मात्मा व्यक्ति के मन में प्रत्येक स्त्री के प्रति श्रद्‍धा भावना रहनी चाहिए। स्त्री को हीन मानना अधर्म है।'

भीम ने अहंकार त्यागकर देवी को झुककर प्रणाम किया।

●●●

27.

संत का आदेश

राजगृह के राजा अंबुबीच परम धर्मात्मा और प्रजा हितैषी थे। वे एक परम विरक्तसंत के सत्संग में जाया करते थे। संत कहते थे, 'राजा का धर्म है कि वह अपनी प्रजा के किसी भी व्यक्ति को दु:खी न होने दे। मंत्रियों और राज कर्मचारियों पर सतर्क निगाह रखे, ताकि वे किसी के साथ अन्याय न कर सकें। उसे चापलूस मंत्रियों से सतर्क रहने की भी जरूरत है।'

राजा संतजी के उपदेशों का पालन करने का प्रयास करते थे।

राजा का एक मंत्री महाकर्णि कुटिल था। उसने राजा की प्रशंसा कर उन्हें वश में कर लिया। राजा उसकी चापलूसी में फँसकर आरामतलब होते चले गए। अचानक उन्हें कोई रोग हो गया। वे निराश होकर एक कमरे में पड़े रहने लगे। महाकर्णि उनकी बीमारी का लाभ उठाकर राजसत्ता पर अधिकार करने में सफल हो गया। वह राजा के विश्वासपात्र मंत्रियों व अन्य अधिकारियों को हटाकर पूरी तरह मनमानी करने लगा। उसके उत्पीड़न से प्रजाजन त्राहि-त्राहि कर उठे।

स्थिति की जानकारी मिलने पर संतजी एक दिन चुपचाप राजा के पास पहुँचे। उन्होंने कहा, 'चापलूसी से खुश होकर तुमने एक दुष्ट मंत्री को पूरी छूट देकर घोर अधर्म किया है। प्रजा की आह तुम्हें ले डूबी है। अत: निराशा को भगाओ। विश्वस्त मंत्रियों की सहायता से पुन: सत्ता संभालो। बीमारी स्वत: भाग जाएगी।'

संतजी की प्रेरणा से राजा ने महाकर्णि के हाथ से सत्ता छीनकर पुन: राजा का दायित्व निभाया। संत के आशीर्वाद से वे स्वस्थ भी हो गए।

●●●

28.

ऋषि का तेज

महर्षि कश्यप धर्मशास्त्रों के अध्ययन में लगे रहते थे। वे अपने आश्रम में रहनेवाले छात्रों को उपदेश दिया करते थे कि धर्म का स्वयं पालन करना चाहिए तथा यदि कोई धर्म के विरुद्ध किसी व्यक्ति का उत्पीड़न करता है, तो उस दुष्ट से उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहना चाहिए। अन्याय सहन करना घोर पाप है।

एक दिन महर्षि कश्यप के पुत्र महोत्कट काशी नरेश के पुत्र का विवाह संपन्न कराने जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने धूम्राक्ष राक्षस को एक दिव्य शस्त्र के साथ देखा। धूम्राक्ष ने काशी क्षेत्र में आतंक फैला रखा था। वह निरपराध व्यक्तियों का उत्पीड़न करता था और यज्ञ आदि के विध्वंस को तत्पर रहता था। ऋषि महोत्कट को पिता का उपदेश याद आ गया। उन्होंने राक्षस धूम्राक्ष को चुनौती दे डाली तथा देव द्वारा दिए गए शस्त्र छीनकर उन्हीं से

उसका वध कर डाला। पता चलते ही धूम्राक्ष के पुत्र जघन और मनु ने महोत्कट ऋषि को काशी नरेश के महल में पहुँचकर घेर लिया। ऋषि ने अपने तेज से इन राक्षसों का भी वध कर डाला।

काशी के एक विद्वान् पंडित ने ऋषि से कहा, 'आप ऋषि हैं। आपको धर्म-कर्म में ही रत रहना चाहिए। आपको धूम्राक्ष से बैर मोल लेने की क्या आवश्यकता थी?'

महोत्कट ने कहा, 'साधु-संतों और ऋषियों का यह कर्तव्य भी होता है कि वे अधर्म और अन्याय को मूक बने रहकर सहन न करें। मैंने राक्षसों का संहार कर धर्म का ही पालन किया है।'

काशी नरेश के पुत्र का विवाह कराकर वे अपने आश्रम लौट गए।

●●●

29.

राजा का प्रायश्चित्त

इक्ष्वाकु वंश के राजा त्रिवृष्ण प्रजा के हित का सदैव ध्यान रखते थे। उन्होंने अपने पुत्र अरुण को धर्मशास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ युद्ध कौशल में भी पारंगत बनाया। राजकुमार अरुण की राजपुरोहित के पुत्र वृशजान से मित्रता थी। वृशजान अत्यंत विद्वान् और विभिन्न विद्याओं के ज्ञाता थे। अरुण की वीरता और वृशजान के पांडित्य की दूर-दूर तक ख्याति फैलने लगी।

राजा ने अरुण को राजसत्ता सौंप दी। अरुण ने कुछ ही समय में आदर्श और शक्तिशाली शासक के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली। पुरोहित पुत्र वृशजान ने घोर तप करके अग्निदेव का वरदान प्राप्त कर लिया।

एक बार राजा दिग्विजय पर निकले। उनका रथ वृशजान चला रहे थे। अचानक रथ के पहिये के नीचे आकर एक ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हो गई। इस हत्या का दोषी कौन है—इस पर दोनों में विवाद हो गया। वृशजान ने शास्त्रों का उद्धरण देकर कहा, 'ऐसी दुर्घटना के लिए दोषी वाहन का मालिक होता है।'

राजा अहंकार में आकर अपने को निर्दोष बताते रहे। यह देखकर वृशजान ने राज्य छोड़ दिया। राजा के रोकने पर भी वे चले गए। निर्दोष बालक की मृत्यु के शाप और अग्निदेव के प्रकोप से यज्ञादि सत्कर्म बंद हो गए। राज्य में अशांति फैलने लगी।

राजा तुरंत वृशजान की शरण में पहुँचे। उन्होंने क्षमा माँगी तथा कहा, 'ब्राह्मण- पुत्र की अनजाने में हुई हत्या का दोष मैं स्वीकार करता हूँ और प्रायश्चित्त के रूप में प्राण तक देने को तैयार हूँ।'

अग्निदेव ने राजा को क्षमा कर दिया।

●●●

30.

न्याय की ही विजय होती है

महाभारत युद्ध की बात है। अश्वत्थामा द्वारा छोड़े गए नारायण अस्त्र से पांडवों के असंख्य सैनिकों का विनाश हो गया। अर्जुन ने यह दृश्य देखा, तो अश्वत्थामा को ललकार कर कहा, 'अपने बल और पराक्रम का प्रभाव हम पर दिखा। अब तेरे मरण का समय निकट आनेवाला है।'

अर्जुन के कठोर वचन सुनकर क्रोधित हो अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण व अर्जुन पर देवताओं से अभिमंत्रित आग्नेयास्त्र छोड़ दिया। उस आग्नेयास्त्र का श्रीकृष्ण और अर्जुन पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। अश्वत्थामा निराश होकर धनुष त्यागकर रथ से कूद पड़ा। वह रणभूमि से भागने लगा। वह कुछ दूर ही पहुँचा था कि अचानक उसे व्यासजी दिखाई दिए। आँसू बहाते हुए उसने कहा, 'महर्षि, मेरे अजेय और दिव्य आग्नेयास्त्र का प्रयोग विफल कैसे हो गया? इसके प्रहार से श्रीकृष्ण और अर्जुन कैसे जीवित बच गए?'

व्यासजी ने अश्वत्थामा को समझाते हुए कहा, 'श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं। वह शंकर भगवान् के भक्त हैं, इसलिए कोई भी दिव्य अस्त्र उनका बाल भी बांका नहीं कर सकता।' व्यासजी ने कुछ क्षण रुककर कहा, 'अश्वत्थामा, अच्छी तरह जान लो कि श्रीकृष्ण पांडवों के पक्ष को न्यायपूर्ण और धर्ममय मानकर ही अर्जुन के सारथी बने हैं। जिसके पक्ष में धर्म है, उसे कभी कोई पराजित नहीं कर सकता।'

अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण की महत्ता स्वीकार कर ली।

●●●

31.

अनूठी विनयशीलता

गोस्वामी तुलसीदासजी यह जानते थे कि श्रीराम, श्रीकृष्ण और भगवान् शंकर में कोई अंतर नहीं है। इसलिए वे एक बार भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि के दर्शन के लिए वृंदावन पहुँचे। वे श्रीराम गुलेला नामक स्थान पर रुके।

श्री भक्तमाल के रचयिता परम भागवत संत श्री नाभाजी उन दिनों वृंदावन आए हुए थे। उन्होंने संतों को प्रसाद (भोजन) ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। उन्हें यह पता नहीं था कि तुलसीदास भी वृंदावन आए हुए हैं। तुलसीदास ने नाभाजी की ख्याति सुन रखी थी। उन्हें जैसे भगवान् से प्रेरणा मिली कि नाभादासजी द्वारा आयोजित भंडारे में जाकर वैष्णव संतों के दर्शन करें। वे चुपचाप वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने देखा कि प्रसाद के लिए संत पंक्ति में बैठ चुके हैं। कहीं जगह नहीं बची है। तुलसीदास उस स्थान पर बैठ गए, जहाँ संतों की जूतियाँ रखी हुई थीं। किसी ने उनके सामने भी पत्तल रख दी। प्रसाद परोसने वाले ने सब्जियाँ व पूरियाँ पत्तल में परोस दीं। बालटी में खीर लेकर आए संत-सेवक ने पूछा, 'बाबा, खीर किस पात्र में परोसूँ?'

तुलसीदासजी ने एक संत की जूती की ओर संकेत कर कह दिया, 'इसमें परोस दो।' यह सुनते ही खीर परोसने वाला नाराज होकर शोर मचाने लगा।

शोर सुनकर संत नाभादास वहाँ पहुँचे। तुलसीदास को देखते ही वे उनके चरणों में पड़ गए। संत नाभाजी तथा

अन्य संतगण गोस्वामीजी की विनयशीलता देखकर हतप्रभ थे।

●●●

32.

अहंकार काफूर हो गया

एक सम्राट् समय-समय पर एक विरक्त संत के सत्संग के लिए जाया करता था।

संत अपने उपदेश में सदाचारी जीवन बिताने, अहंकार से दूर रहने, प्रजाजनों के दु:ख-दर्द में सहायता करने की प्रेरणा दिया करते थे। राजा सदाचारी था, परंतु राज्य और धन के अहंकार के कारण कई बार वह नगर के विद्वानों का अपमान कर देता था। संतजी को राजा के इस दुर्गुण का पता लग गया। वे चाहते थे कि सदाचारी व विवेकी राजा को अहंकार से मुक्त किया जाए।

एक दिन राजा उनके सत्संग के लिए पहुँचे। उसने कहा, 'महाराज, मेरे मन को पूर्ण शांति नहीं मिल पा रही हैं। कोई ऐसी कमी जरूर है, जो मुझे परेशान रखती है।'

संत जानते ही थे कि अहंकार के कारण इनका मन अशांत रहता है। उन्होंने कहा, 'यदि मेरी बात मानने का वचन दो, तो उपाय बता देता हूँ। उससे तुम्हारा एक दुर्गुण दूर हो जाएगा।'

राजा ने वचन दे दिया। संत ने कहा, 'कल से नगर में जाकर सात दिन तक विद्वानों व श्रेष्ठजनों के घर से भिक्षा माँगो। सात दिन में तुम इसका चमत्कार देखोगे।'

राजा ने कहा, 'जिन लोगों को मैं देता हूँ, उनके आगे हाथ पसारना बहुत मुश्किल होगा।'

संत ने जवाब दिया, 'इसी प्रयोग से तुम दुर्गुण से मुक्त हो पाओगे।'

राजा ने विद्वान् पंडितों व अन्य श्रेष्ठ जनों के द्वार पर पहुँचकर भिक्षा माँगी। उनका अहंकार पूरी तरह नष्ट हो गया। उन्हें शांति की अनुभूति होने लगी।

●●●

33.

अनूठी करुणा

महर्षि च्यवन अत्यंत परोपकारी संत थे। अपने दर्शन के लिए आने वालों से वे कहा करते थे कि मूक जीवों के प्रति दया करना सर्वोपरि धर्म है। महर्षि अपने आश्रम में बैठकर स्वयं पक्षियों को दाना चुगाया करते थे और गाय की सेवा किया करते थे।

एक बार महर्षि नदी के जल में बैठकर मंत्र जाप कर रहे थे। कुछ मछुआरों ने मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल फेंका। जाल खींचा गया, तो मछली आदि जलचरों के साथ महर्षि च्यवन भी जाल में बाहर आ गए। मल्लाह उन्हें

जाल में फँसा देखकर घबरा गया। उन्होंने उनसे जाल से बाहर निकल आने की प्रार्थना की, परदुख कातर महर्षि मछलियों को पानी बिना तड़पते देखकर द्रवित हो उठे। उन्होंने कहा, 'यदि मत्स्यों को पुन: जल में छोड़ देंगे, तभी मैं जाल से बाहर आऊँगा, अन्यथा मैं भी इन्हीं के साथ प्राण दे दूँगा।'

यह समाचार राजा नुहुष के पास पहुँचा। वे तुरंत नदी के तट पर पहुँचे तथा महर्षि च्यवन को प्रणाम किया।

महर्षि ने कहा, 'राजन्, इन मछुआरों ने बहुत परिश्रम करके मछलियों को जाल में फँसाया है। यदि आप इन्हें मेरा तथा मछलियों का मूल्य चुका दें, तो हम सब जाल से मुक्त हो जाएँगे।'

राजा ने मछुआरों को स्वर्णमुद्राएँ देने की पेशकश की। यह देख पास ही खड़े एक संत ने कहा, 'महर्षि का मूल्य स्वर्णमुद्राओं से नहीं आंका जा सकता। आप गाय भेंट कर इन्हें बचा सकते हैं।'

राजा नुहुष ने गाय देकर महर्षि व मछलियों को जाल से मुक्त करा लिया।

●●●

34.

अनूठा तप

काल नामक ब्राह्मण परम विरक्त और तपस्वी था। सांसारिक सुखों व किसी तरह के भी प्रलोभनों से दूर रहकर वह धर्मशास्त्रों के अध्ययन और भगवान् की भक्ति में लगा रहता था। एक बार उसने पुष्कर तीर्थ में रहकर घोर तप किया। बिना अन्न-जल ग्रहण किए घोर तप करने के कारण उसके मस्तक से निकलने वाले तेज से देवलोक तक जलने लगा। देवताओं में खलबली मच गई। वे उनके पास पहुँचे और मनचाहा वर माँगने को कहा। ब्राह्मण ने कहा, 'मुझे कुछ नहीं चाहिए। यदि वर ही देना है, तो यही दें कि मैं निरंतर जप-तप करता रहूँ।'

वह निरंतर तप करता रहा। उसका कठोर तप देखकर इंद्र का सिंहासन भी डाँवाँडोल होने लगा। इंद्र ने भयभीत होकर अप्सराओं को काल के तप में विघ्न डालने के लिए भेजा। तप में लीन काल ने उन अप्सराओं की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वे निराश होकर इंद्र के पास लौट आईं। इंद्र ने बार-बार प्रलोभन देकर ब्राह्मण का तप भंग करने का प्रयास किया, किंतु वह तो किसी भी प्रलोभन को त्यागने के दृढ़ संकल्प के बाद ही तप करने बैठा था। वह किसी भी लालच में नहीं आया। आखिर में इंद्र ने मृत्यु का भय दिखाकर उसके तप को भंग करने का प्रयास किया।

ब्राह्मण ने काल (मृत्यु) को चुनौती देते हुए कहा, 'मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ। आत्म साक्षात्कार करने के बाद मुझे काल का भय क्या सताएगा?' ब्राह्मण को तप और विरक्ति में अटल देखकर भगवान् विष्णु ने दर्शन देकर उन्हें जीवन-मरण के बंधन से मुक्त कर दिया।

●●●

35.

पत्र का प्रभाव

दक्षिण की एक रियासत के राजा कृष्णशक्ति धर्मपरायण और न्यायप्रिय थे। वे प्रजा की भलाई के कामों में जुटे रहते थे, लेकिन उनके भाई-भतीजे बहुत स्वार्थी व लंपट थे। वे चाहते थे कि राजा राज्य की संपत्ति धर्म-कर्म व प्रजा की भलाई में खर्च न करें और उन्हें भी उसका सुख भोगने दें। राजा को राजधर्म पर अटल देखकर उन्होंने षड्यंत्र रच कृष्णशक्ति का राज्य हड़प लिया। राजा को मजबूर होकर पास के राज्य में जाना पड़ा। वहाँ अपना नाम बदलकर वे राजा विक्रमादित्य की सेना में शामिल हो गए। अपने गुण और विवेक के कारण कुछ ही समय में कृष्णशक्ति ने विक्रमादित्य का मन जीत लिया। राजा ने उन्हें अपना प्रमुख सलाहकार बना दिया।

एक दिन कृष्णशक्ति की पत्नी का पत्र गुप्त रूप से उनके पास पहुँचा। वह रात में दीये की रोशनी में पत्र पढ़ रहे थे कि अचानक राजा विक्रमादित्य वहाँ आ पहुँचे और चुपचाप पत्र में लिखी बातें सुनते रहे। वे समझ गए कि कृष्णशक्ति तो स्वयं राजा रह चुके हैं। उनकी प्रजा की दयनीय स्थिति की बात सुनते ही वे द्रवित हो उठे। उन्होंने कृष्णशक्ति को खांडवटक ग्राम का प्रधान बना दिया।

विक्रमादित्य की सहायता से कुछ ही दिनों में कृष्णशक्ति ने सेना के बल पर अपने राज्य पर पुन: अधिकार कर लिया। राज्य की जनता ने कुशासन से मुक्ति पाते ही जश्न मनाया। कृष्णशक्ति के अत्याचारी भाई को राज्य छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। राज्य में पुन: धर्म-कर्म का बोलबाला हो गया। प्रजा सुख से रहने लगी।

●●●

36.

शस्त्रों का सदुपयोग ही करें

महर्षि भारद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य ने वेद शास्त्रों का गहन अध्ययन करके अनूठा ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने धर्मशास्त्रों में पढ़ा था कि धर्म और न्याय की रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रों में निपुणता प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। द्रोणाचार्य ने अग्निवेश से आग्नेयास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। कौरवों-पांडवों को उन्होंने शस्त्र चालन का प्रशिक्षण दिया।

एक बार द्रोण को पता चला कि परशुराम ब्राह्मणों को सर्वस्व दान कर रहे हैं। वह महेंद्राचल पर्वत पर जा पहुँचे। महर्षि परशुराम को साष्टांग प्रणाम करके कहा, 'मैं महर्षि भारद्वाज का पुत्र हूँ, मुझे ऐसी वस्तु दें, जिसका कभी अंत न हो।'

परशुरामजी ने कहा, 'तपोनिधान द्रोण, मेरे पास सुवर्ण और जो भी अन्य धन था, वह सब मैं दान कर चुका हूँ। मैंने पृथ्वीरूपी संपत्ति कश्यप ऋषि को दे दी है। अब मेरे पास कोई संपत्ति नहीं बची है। अब मेरे पास कुछ शस्त्रास्त्र तथा मेरा शरीर बचा है। इन दोनों में से जो आप चाहें, मैं सहर्ष देने को तत्पर हूँ।'

द्रोण ने विनत भाव से कहा, 'भार्गव श्रेष्ठ, आप मुझे शस्त्रास्त्र तथा उन्हें चलाने की विद्या देकर कृतार्थ करें।'

परशुराम ने द्रोण को शिष्य स्वीकार करते हुए धनुर्वेद का संपूर्ण ज्ञान प्रदान किया। साथ ही कहा, 'यह ध्यान

रखना कि शस्त्रास्त्रों का धर्म व न्याय की रक्षा के लिए उपयोग ही सार्थक होता है, अन्यथा शस्त्र विद्या निरर्थक हो जाती है।'

द्रोण उन्हें प्रणाम कर लौट आए।

●●●

37.

पतन से बचो

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे। प्रत्येक दिन अनेक भक्तजन उनके सत्संग व दर्शन के लिए आया करते थे।

एक दिन एक जिज्ञासु उनके सत्संग के लिए पहुँचा। उसने बुद्ध से प्रश्न किया, 'भगवन्, पतन से बचने के लिए क्या-क्या उपाय किये जाने चाहिए?'

बुद्ध ने उपदेश देते हुए बताया, 'हमेशा धर्म और न्याय पर दृढ़ रहना चाहिए। धर्म के प्रति घृणा व संशय पैदा होते ही पतन शुरू हो जाता है। कुसंग करने से भी पतन होता है। अत: सत्पुरुषों का संग ही करना चाहिए। दुर्व्यसनी से दूर रहना चाहिए। जो व्यक्ति गप्प मारने में समय बिताता और क्रोध करता है, उसके पतन की आशंका बनी रहती है। अत: हमेशा कर्मठ व शांतचित्त रहने से पतन से बचा जा सकता है। जिस व्यक्ति को जन्म, जाति एवं धन का अभिमान हो जाता है, वह एक-न-एक दिन गर्त में अवश्य गिरता है। मानव को किसी प्रकार के अहंकार को पास भी नहीं फटकने देना चाहिए। जो व्यक्ति असंयमी व भोगी है, शराबी व जुआरी है, उसके पतन को कोई रोक नहीं सकता।'

भगवान् बुद्ध ने पतन के ग्यारह लक्षणों का विस्तार से वर्णन करने के बाद कहा, 'जो व्यक्ति सत्य, संयम और अहिंसा का पालन करता है, अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करता है, अपनी कमाई का कुछ अंश गरीबों की सेवा-सहायता में खर्च करता है, उसकी सदैव उन्नति होती है।'

भगवान् के उपदेश से जिज्ञासु का चित्त शांत हो गया।

●●●

38.

तृष्णा का दूत

वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त की मृत्यु के बाद उनका पुत्र राजा बना। वह भोजन प्रिय था। तरह-तरह के स्वादिष्ट व्यंजन तैयार कराकर सोने की थाली में भोजन किया करता था। वह शुद्धता का भी विशेष ध्यान रखता था। इस अनूठी रुचि के कारण उसे लोग 'भोजन शुद्धिक-राजा' कहने लगे थे।

राजा ने यह आदेश दे रखा था कि यदि कोई दूत उससे मिलना चाहे, तो उसे तुरंत उनके पास पहुँचाया जाए। ऐसे में, एक व्यक्ति के मन में आया कि वह भोजन करते समय राजा के पास पहुँचकर अपनी आँखों से देखे कि वह सोने की थाली में क्या-क्या खाता है? मौका मिले, तो भोजन को चखकर भी देखे।

एक दिन अचानक वह 'मैं दूत हूँ' कहकर राजा के महल में घुस गया। किसी ने उसे नहीं रोका। वह वहाँ तक पहुँच गया, जहाँ राजा भोजन कर रहा था, फिर मौका मिलते ही उस व्यक्ति ने झपटकर थाली में से एक कौर उठाया और मुँह में डाल लिया। अंगरक्षक ने यह दुस्साहस देखा, तो सिर काटने के लिए तलवार उठा ली, पर राजा ने उसे रोकते हुए उस व्यक्ति से कहा, 'डरो नहीं, छककर भोजन करो।' उसके भरपेट भोजन करने के बाद राजा ने पूछा, 'तुम किसके दूत हो?'

उसने कहा, 'राजन्, मैं तृष्णा का दूत हूँ। मैं काफी समय से आपके अद्भुत भोजन से तृप्त होना चाहता था।

राजा का विवेक जाग गया कि भूख व जीभ ही तो लोगों से पाप कर्म कराती है। मैं राजा होकर भी पेट का दूत हूँ। राजा ने उसी समय सात्विक भोजन करने का संकल्प ले लिया।

●●●

39.

अहिंसा-संयम से ही कल्याण

भगवान् महावीर उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान थे। उनके सत्संग और दर्शन के लिए आए अनेक राजा बैठे हुए थे। साधारण परिवारों के श्रद्धालुजन भी उनका दिव्य उपदेश सुनने के लिए लालायित थे।

भगवान् महावीर ने कहा, 'पृथ्वी प्रेम का मंदिर है। इसे हिंसा, राग, द्वेष जैसे दुर्गुणों से अपवित्र नहीं करना चाहिए। अपनी कामनाओं पर नियंत्रण रखो। यह जान लो कि कामनाओं का कभी अंत नहीं होता। एक जन्म में तमाम कामनाओं की पूर्ति असंभव है। अत: कामनाओं पर नियंत्रण अति आवश्यक है।'

कुछ क्षण रुककर महावीर ने पुन: कहा, 'यदि सच्चा सुख और शांति चाहते हो, तो निर्बलों और असहायों की सेवा-सहायता किया करो, इससे बढ़कर श्रेष्ठ कर्म दूसरा नहीं है। प्राणी मात्र का दु:ख देखकर दु:खी होने वाला ही सच्चा मानव है। हिंसक कर्म व कूटवाणी से सुख की जगह दु:ख व अशांति बढ़ती है। प्रेम व अहिंसा से ही संसार को वश में किया जा सकता है। उदार और प्रेमी बनो। प्रेम हमारे जीवन का ध्येय बनना चाहिए।'

भगवान् महावीर ने कहा, 'अहिंसा, अपरिग्रह और संयम—इन तीन व्रतों को अपनाने से ही राजा से लेकर रंक तक का कल्याण होगा। अपरिग्रह, सुख-साधन, संपत्ति और वैभव को मर्यादित करने का सशक्त साधन है। सारे जगत के वैभवों से भी मनुष्य की तृप्ति नहीं हो सकती, यह जान लो।' सभी महावीर के अमृत तुल्य उपदेश सुनकर गदगद थे।

अनेक लोगों ने उसी समय उनके उपदेशों का पालन करने का संकल्प ले लिया।

●●●

40.

सच्चे दरियादिल इनसान

अरब और रोमन राज्यों के बीच महासंग्राम हो रहा था। दोनों पक्षों के असंख्य योद्धा मारे गए। शाम होते ही नियमानुसार लड़ाई बंद हुई, तो इस्माइल को अपने चचेरे भाई की चिंता हुई। उसने सोचा कि यदि भाई घायल पड़ा मिला, तो उसे उठाकर चिकित्सालय ले जाऊँगा। वह एक हाथ में लालटेन और दूसरे में पानी भरा लोटा लेकर युद्धस्थल पर पहुँचा। कुछ देर ढूँढ़ने के बाद उसका भाई खून से लथपथ पड़ा हुआ मिला। वह प्यासा था और पानी माँग रहा था। घायल भाई को जैसे ही वह पानी पिलाने लगा कि किसी दूसरे घायल की 'पानी-पानी' चिल्लाने की आवाज उसे सुनाई दे गई। यह सुनकर घायल भाई ने कहा, 'भाईजान, मुझे नहीं, पहले उसे पानी पिलाओ।'

इस्माइल वहाँ पहुँचा, तो अरब सरदार ने कहा, 'उधर कुछ दूरी पर पानी माँगते-माँगते एक सैनिक बेहोश हो गया है। उसे पानी मिलना ज्यादा जरूरी है, वरना वह मर जाएगा।'

अब इस्माइल तीसरे घायल के पास पहुँचा। उसने नब्ज टटोली, तो उसे मरा पाया। वह तुरंत सरदार के पास पहुँचा, तब तक वह भी मर चुका था। अब वह अपने चचेरे भाई के पास पहुँचा, तब तक उसकी भी आँखें बंद हो चुकी थीं। इस्माइल दोनों की दयालुता देखकर हतप्रभ रह गया।

अरब वासियों ने जब यह किस्सा अपने साथियों को सुनाया, तो सभी की आँखें उन सच्चे इनसानों की याद में गीली हो उठीं।

●●●

41.

सत्संग का सुपरिणाम

काशी नगरी में हरिदत्त नामक एक व्यक्ति रहता था। कुसंग में पड़ने के कारण वह दुर्व्यसनी बन गया। एक साथी ने उससे कहा, 'यदि दिमाग से काम लो, तो हम दोनों की दरिद्रता दूर हो सकती है।' योजना बनाकर उस व्यक्ति ने यह बात फैला दी कि हरिदत्त त्रिकालदर्शी है। वह ध्यान-योग के बल से चोरी हुई वस्तु का पता लगा देता है।

एक दिन नगर में बारात आई। दोनों ने रात के समय दूल्हे का घोड़ा चुराकर जंगल में पेड़ के नीचे बाँध दिया। लोग हरिदत्त के पास पहुँचे। उसने ध्यान का नाटक करते हुए बता दिया कि घोड़ा जंगल में बँधा है। घोड़ा मिल गया, तो हरिदत्त चमत्कारी सिद्ध के रूप में पूजा जाने लगा।

एक रात राजमहल में चोरी हो गई। राजा का मंत्री हरिदत्त के पास आया। उसने कहा, 'कल बताऊँगा।' चोर वहीं बैठा हुआ था। वह घबरा गया। उसने चोरी किए हुए धन के बारे में बताते हुए हरिदत्त से प्राणरक्षा की गुहार

लगाई।
हरिदत्त ने मंत्री से कहा, 'चोर तो मर गया, किंतु धन अमुक जगह जमीन में गड़ा है।'
धन मिल जाने पर राजा ने उसे इनाम दिया।
हरिदत्त एक संत के प्रति श्रद्धा रखता था। संतजी को उसकी ठगी के धंधे का पता चला, तो वे बहुत दु:खी हुए। वे नगर में पहुँचे। हरिदत्त दर्शन के लिए आया। संतजी ने कहा, 'धर्मशास्त्रों में लिखा है कि जो व्यक्ति तंत्र-मंत्र के नाम पर किसी को ठगता है तो उसकी बहुत दुर्दशा होती है। तुम्हारे पापों का घड़ा भरने वाला है।'
संतजी के वचन सुनते ही वह काँप उठा। उसने ठगी का धंधा बंद करने का संकल्प ले लिया।

●●●

42.

अभिमान शत्रु है

भगवान् श्रीराम वनवास काल के दौरान संकट में हनुमानजी द्वारा की गई अनूठी सहायता से अभिभूत थे। एक दिन उन्होंने कहा, 'हे हनुमान, संकट के समय तुमने मेरी जो सहायता की, मैं उसे याद कर गद्गद हो उठा हूँ। सीताजी का पता लगाने का दुष्कर कार्य तुम्हारे बिना असंभव था। लंका जलाकर तुमने रावण का अहंकार चूर-चूर किया, वह कार्य अनूठा था। घायल लक्ष्मण के प्राण बचाने के लिए यदि तुम संजीवनी बूटी न लाते, तो न जाने क्या होता?' इन तमाम बातों का वर्णन करके श्रीराम ने कहा, 'तेरे समान उपकारी सुर, नर, मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैंने मन में खूब विचार कर देख लिया, मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।'
सीताजी ने कहा, 'तीनों लोकों में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो हनुमानजी को उनके उपकारों के बदले में दी जा सके?'
श्रीराम ने पुन: जैसे ही कहा, 'हनुमान, तुम स्वयं बताओ कि मैं तुम्हारे अनंत उपकारों के बदले क्या दूँ, जिससे मैं ऋण मुक्त हो सकूँ।'
श्री हनुमानजी ने हर्षित हो, प्रेम में व्याकुल होकर कहा, 'भगवन्, मेरी रक्षा कीजिए—मेरी रक्षा कीजिए, अभिमान रूपी शत्रु कहीं मेरे तमाम सत्कर्मों को नष्ट नहीं कर डाले। प्रशंसा ऐसा दुर्गुण है, जो अभिमान पैदा कर तमाम संचित पुण्यों को नष्ट कर डालता है।' कहते-कहते वे श्रीरामजी के चरणों में लोट गए। हनुमानजी की विनयशीलता देखकर सभी हतप्रभ हो उठे।

●●●

43.

असली श्राद्ध

काशी नगर में कृकल नामक वैश्य रहते थे। वे और उनकी पत्नी सुकला—दोनों परम धर्मात्मा और परोपकारी थे। एक बार कृकल की इच्छा हुई कि तीर्थस्थलों पर जाकर धार्मिक अनुष्ठान, जप-दान आदि किए जाएँ। उनकी पत्नी भी तीर्थयात्रा पर जाना चाहती थी, किंतु इस आशंका से कि कहीं वह इतनी दूर चलकर बीमार न हो जाए, कृकल उसे अपने साथ नहीं ले जाना चाहते थे, इसलिए वे चुपचाप अकेले चले गए। पितृपक्ष के दौरान उन्होंने एक नदी के पावन तट पर विधि-विधान से अपने माता-पिता और अन्य पूर्वजों का श्राद्ध किया। वे घर लौटने लगे। उन्हें यह विश्वास था कि श्राद्ध करने के कारण उनके पितर संतुष्ट होकर स्वर्गलोक चले गए होंगे। अचानक उन्हें लगा कि कोई दिव्य पुरुष उनके पितरों को बंधन में बांधे खड़ा है। कृकल ने यह देखा, तो दु:खी होकर पूछा कि जब उन्होंने विधिवत् इनका श्राद्ध कर दिया है, तो इन्हें बंधन में क्यों बाँधा गया है?

दिव्य पुरुष ने कहा, 'तुमने पत्नी को साथ बिठाए बिना श्राद्ध किया था। धर्मशास्त्रों का विधान है कि प्रत्येक शुभ कार्य में पत्नी को साथ रखना चाहिए। तुमने पत्नी को सोते हुए छोड़कर तीर्थयात्रा पर आकर धर्म विरुद्ध कार्य किया है। बिना पत्नी को बगल में बिठाए पितरों का श्राद्ध किया, इससे तुम्हारे पितर भी संतुष्ट नहीं हुए और बंधन में जकड़े रहे। अब तुम घर लौटकर पत्नी के साथ मिलकर दोबारा श्राद्ध करो, तभी इनकी मुक्ति होगी।' उन्होंने ऐसा ही किया, तभी उनके पितरों को तृप्ति मिली।

●●●

44.

अहंकार का दुष्परिणाम

द्रोणाचार्य एक दिन अपने पुत्र अश्वत्थामा को दूध के लिए रोते देखकर द्रवित हो उठे। पहली बार उन्हें अनुभूति हुई कि दरिद्रता क्या होती है। उन्हें राजा द्रुपद की याद आ गई, जो उनके सहपाठी रहे थे। उन्होंने सोचा कि यदि वे द्रुपद के पास पहुँचकर अपनी स्थिति से अवगत कराएँ, तो शायद गरीबी दूर हो जाएगी। वे द्रुपद के पास पहुँचे। द्रोणाचार्य ने जैसे ही उन्हें याद दिलाया कि मैं और आप सहपाठी थे कि राजा पर अहंकार सवार हो गया।

द्रुरपद ने कहा, 'ब्राह्मण के नाते मैं तुम्हें भिक्षा के रूप में कुछ दे सकता हूँ, पर मित्रता का दंभ मत भरो। संबंध और मैत्री बराबर के लोगों के साथ होते हैं।'

द्रुपद के अहंकारपूर्ण शब्द सुनकर द्रोण का स्वाभिमान जाग उठा। वे खाली हाथ लौट आए और संकल्प किया कि एक दिन वे राजा का अभिमान चूर-चूर करेंगे। द्रोण धनुर्विद्या के अप्रतिम आचार्य थे। वे हस्तिनापुर पहुँचे। कौरव और पांडव कुमारों को शस्त्र संचालन की शिक्षा देने के लिए उन्हें नियुक्त किया गया। उन्होंने सभी राजकुमारों को धनुर्विद्या तथा अन्य शस्त्रों के संचालन में निपुण बना दिया।

दीक्षा पूरी होने के बाद जब शिष्यों ने उनसे गुरु दक्षिणा लेने की प्रार्थना की, तो उन्होंने राजा द्रुपद के राज्य पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। राजकुमारों ने द्रुपद के राज्य पर आक्रमण कर दिया। द्रुपद उनके सामने टिक नहीं पाए। शिष्यों ने उन्हें बंदी बनाकर गुरु के सामने पेश किया।

द्रोणाचार्य ने पूछा, 'कहो राजन, अब तो मित्रता हो सकती है?'
द्रुपद को पुरानी बात याद हो उठी। उनका अभिमान चूर-चूर हो गया।

●●●

45.

शील और सत्य ही आत्मा हैं

संत सुकरात सत्य और सदाचार को सर्वोपरि धर्म बताया करते थे। उनका मत था कि बड़े-से-बड़ा संकट आने पर भी मानव को सत्य व न्याय पर अटल रहना चाहिए। यदि सामने काल भी खड़ा हो, तो डरकर सत्य का त्याग कदापि नहीं करना चाहिए।

सुकरात की तेजस्विता व निर्भीकता देखकर गलत कर्मों में लगा वर्ग उनका विरोधी बन गया। उन्हें सत्य से विचलित करने के लिए धमकियों का सहारा लिया गया, लोभ-लालच दिए गए। इसके बावजूद वे सत्य पर अटल रहे, तो उन पर भ्रामक आरोप लगाकर मृत्युदंड सुना दिया गया। निर्णय दिया गया कि उन्हें जहर पिलाकर मार डाला जाए। जहर पिलाने की तिथि घोषित कर दी गई। सुकरात के अनुयायी भक्त उनके पास पहुँच गए। उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। सुकरात को पिलाने के लिए जहर पीसा जा रहा था। वह जहर पीसने वाले के पास पहुँचे तथा बोले, 'लगता है, तुमने कभी जहर नहीं पीसा है। जल्दी-जल्दी पीसकर मुझे पिलाओ, जिससे पास बैठे लोगों का रोना बंद हो जाए।'

सुकरात को प्याले में भरकर जहर पिलाया गया। कुछ देर बाद वे बोले, 'जहर का प्रभाव दिखाई देने लगा है। हाथ-पैर सुन्न और निर्जीव होने लगे हैं, परंतु मित्रो! यह जहर मेरे भीतर के शील व सत्य का बाल भी बांका नहीं कर सकता। शील व सत्य ही तो मेरी आत्मा है। आत्मा अमर है, उसे यह कैसे मारेगा?' यह कहते-कहते संत सुकरात शांत हो गए। उनके अनुयायी उनकी निर्भीकता देखकर नतमस्तक हो उठे।

●●●

46.

महर्षि का श्राप

प्रजापति दक्ष अपने दामाद शिवजी से ईर्ष्या रखते थे। एक बार उन्होंने शिवजी को नीचा दिखाने के कलुषित उद्देश्य से कनखल में यज्ञ का आयोजन किया। उन्होंने यज्ञ में देवर्षियों, महर्षियों तथा देवताओं को आमंत्रित किया, किंतु अपनी पुत्री सती व शिवजी की उपेक्षा की। सर्वयज्ञों में पारंगत महर्षि दधीचि को भी सादर आमंत्रित किया गया था।

महर्षि दधीचि ने शिवजी को अनुपस्थित देखकर दक्ष को समझाते हुए कहा, 'देवादिदेव भगवान् शंकर की कृपा के बिना कोई भी यज्ञ सफल नहीं होता। राग-द्वेष की कुत्सित भावना से किया गया कोई भी सत्कर्म विनाश का कारण बनता है। इसलिए अब भी समय है, हठ त्यागकर भगवान् महादेव को सादर आमंत्रित करो।'

यह सुनते ही प्रजापति दक्ष शिवजी के प्रति कटु वचनों का उपयोग करने लगे। वे उन्हें भूतों और पिशाचों का स्वामी कहने लगे। दक्ष के भय से मंडप में उपस्थित जनों में से किसी ने भी इसका प्रतिवाद नहीं किया, लेकिन महर्षि दधीचि उठे और निर्भीकता से बोले, 'शिवजी के प्रति अपशब्द सुनना मेरे लिए असहनीय है। मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि यह यज्ञ तुम्हारे कल्याण का नहीं, विनाश का कारण बनेगा। भगवान् रुद्र की क्रोधाग्नि से सबकुछ ध्वस्त हो जाएगा।' कहते-कहते महर्षि यज्ञ मंडप से उठकर अपने आश्रम को लौट गए।

इसी यज्ञ में भगवती सती ने आत्मदाह किया और यह यज्ञ दक्ष के सकल विनाश का कारण बना।

●●●

47.

अनूठा प्रेम

भगवान् बुद्ध के शिष्य उपगुप्त परम सदाचारी थे। वे भिक्षुओं से कहते थे कि प्रेम और संयम ही भौतिक व आध्यात्मिक विकास के साधन हैं। समाज द्वारा बहिष्कृत लोगों से प्रेम करनेवाला ही सच्चा धार्मिक है। एक दिन एक सुंदरी उपगुप्त के पास पहुँची। उपगुप्त उसका अनूठा सौंदर्य देखकर आकर्षित हो गए, लेकिन उसी क्षण उन्हें बुद्ध के वचन याद आए गए कि शारीरिक सौंदर्य में नहीं, मन के सौंदर्य में सच्चा आकर्षण होता है। सुंदरी भी उपगुप्त को देखते ही प्रेमपाश में बंध गई थी। उसने उपगुप्त से प्रार्थना की कि वे उसके साथ कुछ क्षण बिताकर उसे उपकृत करें। उपगुप्त ने वचन दिया कि उपयुक्त अवसर पर वे एक बार अवश्य मिलेंगे।

कुछ वर्ष बीत गए। भोग-विलास में रत रहने के कारण युवती को अनेक रोगों ने घेर लिया। उसका रूप-लावण्य नष्ट हो गया। उसके शरीर से दुर्गंध आने लगी। लोगों ने उसे कुलटा बताकर नगर से बाहर निकाल दिया। वह जंगल में दयनीय हालत में अंतिम दिन बिताने लगी। उपगुप्त को अचानक युवती की दुर्दशा का पता चला और उन्हें अपना वचन भी याद हो आया। वे उससे मिलने जा पहुँचे। उन्हें देखते ही युवती की आँखों से आँसू बहने लगे। उपगुप्त ने उसके सिर पर हाथ फेरा, तो वह चमत्कृत होकर बोली, 'जब मैं प्रेम करने योग्य थी, तब तो आप आए नहीं, अब क्या लाभ?'

उपगुप्त ने कहा, 'देवी, शारीरिक आकर्षण को प्रेम नहीं, वासना कहते हैं। मैं आज भी तुमसे प्रेम करता हूँ।'

युवती यह सुनकर आह्लादित हो उठी।

●●●

48.

आनंद से वंचित न करें

कुरु प्रदेश का राजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण का अनन्य भक्त था। सांसारिक सुखों से विरक्ति होते ही राज्य त्यागकर वह वृंदावन जा पहुँचा और वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना करने लगा। एक बार मगध देश के राजा तीर्थयात्रा करते हुए वृंदावन पहुँचे। वटवृक्ष के नीचे तेजस्वी युवक को समाधि में देखकर वे नतमस्तक हो उठे और वहीं बैठकर युवक की समाधि खुलने की प्रतीक्षा करने लगे। घंटों बाद समाधि टूटी, तो राजा ने प्रणाम कर युवक से बात की। उन्होंने कहा, 'तुम्हारे चेहरे का तेज और भावों को देखकर लगता है कि तुम किसी राज परिवार से हो।'

युवक ने कहा, 'राजन्, भगवान् की लीला भूमि में न तो कोई राजकुमार होता है और न राजा। मैं तो श्रीकृष्ण के सखा ग्वाल बालों के चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हूँ।'

राजा की कोई संतान नहीं थी। उसने आग्रह किया, 'तुम हमारे साथ मगध चलो। यहाँ अभाव का जीवन बिताने से गृहस्थ का जीवन ज्यादा श्रेष्ठ है।'

युवक ने पूछा, 'राजन्, क्या गृहस्थ व्यक्ति को दु:ख नहीं भोगना पड़ता? क्या वह हमेशा सुखी रहता है?'

राजा ने कहा, 'ऐसा तो नहीं है। प्रारब्ध के अनुसार दु:ख तो भोगना पड़ता है।'

युवक ने कहा, 'राजन्, मैं तमाम सांसारिक सुख-सुविधाओं से ऊबकर ही भक्ति करने यहाँ आया हूँ। मुझे कृष्ण भक्ति में अनन्य सुख की अनुभूति हो रही है। कृपया मुझे इस अनूठे आनंद से वंचित करने का प्रयास न करें।'

राजा उसके चरणों में नतमस्तक होकर लौट गया।

●●●

49.

अन्न ही ब्रह्म है

भृगु के पिता वरुण ब्रह्मनिष्ठ ऋषि थे। एक बार भृगुजी की जिज्ञासा हुई कि पिताश्री से ब्रह्म का बोध प्राप्त करना चाहिए। उन्होंने उनके श्रीचरणों में बैठकर प्रश्न किया, 'मैंने अनेक धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है, किंतु ब्रह्म का बोध नहीं हो पाया। आप सरलतम भाषा में बताने की कृपा करें कि ब्रह्म क्या है?'

वरुण ने पुत्र के सिर पर हाथ फेरा और बोले, 'अन्नं प्राणं चक्षु: श्रोभं मनो वचमिति' यानी अन्न, प्राण, तप, विज्ञान, आनंद, मन और वाणी ही ब्रह्म हैं।'

उन्होंने विस्तार से बताते हुए कहा, 'अन्न से ही ये सब भूत उत्पन्न होते हैं। अन्न खाकर जीते हैं, अत: अन्न ब्रह्म है। इसलिए अन्न को साक्षात् देवता मान कर उसका आदर करने को कहा गया है। प्राण के बिना शरीर का कोई महत्त्व नहीं है। प्राण प्रत्यक्ष ब्रह्म है। ज्ञान-विज्ञान के बिना मानव अधूरा रहता है। तप से ही परमानंद की अनुभूति संभव है।' इसके बाद वरुण ने पुत्र को आदेश दिया कि वह स्वयं तप करके ब्रह्म का साक्षात्कार करे।

भृगु ने घोर तप किया, तब उन्हें स्वयं अनुभूति हुई कि वास्तव में अन्न, प्राण, तप, विज्ञान, मन और आनंद ही

ब्रह्म के साक्षात् स्वरूप हैं। अन्न को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। शुद्ध कमाई से अर्जित अन्न ही मन-बुद्धि को सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है। अन्न से ही प्राणों की रक्षा होती है। ज्ञान-विज्ञान परमानंद प्राप्ति के साधन हैं। इसलिए वस्तुत: ये सभी ब्रह्म के साक्षात् स्वरूप हैं।

●●●

50.

सत्संग का चमत्कार

संत नामदेव बच्चे थे। एक दिन उनकी माँ ने कहा, 'बेटा, अमुक वृक्ष की छाल उतार लाओ, दवा बनाने के लिए उसकी जरूरत है।'

नामदेव माँ का आदेश मिलते ही जंगल गए, चाकू से पेड़ की छाल खुरची और उसे लेकर वापस आने लगे। उससे रस टपकता जा रहा था। नामदेव बचपन से ही सत्संगी थे। रास्ते में उन्हें एक महात्मा मिले। नामदेव ने उन्हें झुककर प्रणाम किया।

संत ने पूछा, 'यह क्या है हाथ में?'

नामदेव ने जवाब दिया, 'दवा बनाने के लिए पेड़ की छाल लाया हूँ।'

संतजी ने कहा, 'हरे पेड़ को क्षति पहुँचाना अधर्म है। वृक्षों में भी जीवन होता है। इन्हें देवता मानकर पूजा जाता है। वैद्य जब इसकी पत्तियाँ तोड़ते हैं, तो पहले हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि दूसरों के प्राण बचाने के उद्देश्य से आपको कष्ट दे रहा हूँ। यह हमारी संस्कृति का विधान है।'

नामदेव घर पहुँचे। उन्होंने छाल माँ को दे दी और कमरे के कोने में बैठकर चाकू से अपने पैर की खाल छीलने लगे। खून बहने लगा। माँ ने देखा, तो घबराते हुए पूछा, 'बावले, यह क्या कर रहा है?'

उन्होंने जवाब दिया, 'संतजी ने कहा था कि पेड़ों में जीवन होता है। मैं पैर की खाल उतारकर देख रहा हूँ कि क्या छाल या खाल उतारने से दर्द होता है?'

माँ ने बेटे को छाती से लगा लिया। वह समझ गई कि सत्संग में आकर यह संत बन गया है।

आगे चलकर संत नामदेव कण-कण में भगवान् के दर्शन करने लगे। चींटी तक को भी कोई क्षति न पहुँचे, वे इसका हमेशा ध्यान रखते थे।

●●●

51.

ज्ञान खरीदा नहीं जा सकता

राजा जनश्रुति ने ब्रह्मज्ञानी मुनि रैक्व की विरक्ति और ज्ञान की प्रशंसा सुनी, तो वे उनका सत्संग-दर्शन करने के लिए लालायित हो उठे। उन्हें पता चला कि रैक्व बैलगाड़ी में ही विचरण करते हैं और बैलगाड़ी के नीचे बैठकर ही साधना व तपस्या में लीन रहते हैं। उन्होंने भाट को आदेश दिया कि वह पता लगाए कि मुनि रैक्व कहाँ मिलेंगे। कुछ क्षण बाद भाट ने आकर बताया कि मुनि निर्जन जंगल में बैठे साधनारत हैं।

राजा जनश्रुति तुरंत गायें, सोने के कंठहार और अन्य सामग्री लेकर रथ पर सवार होकर उनके पास जा पहुँचे। मुनि को साष्टांग प्रणाम कर उन्होंने कहा, 'ये छह सौ गायें, स्वर्णजड़ित कंठहार तथा रथ आपको भेंट करना चाहता हूँ। उपदेश देने की कृपा करें।'

मुनि रैक्व ने कहा, 'इन गायों, स्वर्णाभूषण व रथ को अपने पास ही रखें। मैं निर्जन वन में ही पूर्ण संतुष्ट हूँ।'

राजा निराश लौट आया। उन्होंने सोचा कि यदि उससे कई गुना धन-संपत्ति तथा अपनी पुत्री को भी उन्हें सौंप दूँ, तो शायद उनसे ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। राजा फिर मुनि रैक्व के पास पहुँचे और कहा, 'मेरी पुत्री को धर्मपत्नी के रूप में स्वीकारें और इस धन को दहेज समझें।'

मुनि रैक्व ने उत्तर दिया, 'राजन्, स्पष्ट जान लें कि ब्रह्मज्ञान कुछ देकर नहीं खरीदा जा सकता। मैं ज्ञान बेचने का व्यापार नहीं करता।'

राजा जनश्रुति यह सुनते ही उनके चरणों में लोट गए। अभिमान दूर होते ही मुनि रैक्व ने उन्हें ज्ञान प्रदान किया।

●●●

52.

क्रोध और संदेह का दुष्परिणाम

राजा धर्मशील हर समय धर्म-कर्म और प्रजा के हित में लगे रहते थे। विद्वानों, शिक्षकों तथा वृद्धों की सेवा के लिए वे स्वयं तत्पर रहा करते थे। गरीबों की सेवा के लिए उन्होंने राज्य भर में औषधालय खुलवाए और कुएँ खुदवाए। राज-काज से बचा समय वे संतों के सत्संग और शास्त्र अध्ययन में बिताते थे।

एक दिन किसी बात को लेकर उन्होंने अपनी पत्नी का अपमान कर दिया। संदेह के कारण वे उसे गालियाँ दे बैठे। कुछ क्षणों के बाद जब उनका क्रोध शांत हुआ, तो उन्हें पत्नी के निर्दोष होने का एहसास हुआ। संदेह ने क्रोध को जन्म दिया और क्रोध ने उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी, जिस कारण उन्होंने एक निर्दोष और धर्मपरायण सदाचारी महिला का अपमान कर घोर पाप कर्म कर डाला था।

मृत्यु के बाद राजा के पाप-पुण्यों का लेखा-जोखा किया गया। दूतों को आदेश दिया गया कि असंख्य सत्कर्मों से संचित पुण्यों के कारण राजा की जीवात्मा को दिव्यलोक ले जाया जाए, लेकिन निर्दोष पत्नी के अपमान के कारण इन्हें नरक के रास्ते स्वर्ग ले जाया जाए। उन्हें नरक के रास्ते ले जाया जा रहा था। उनके असीमित सत्कर्मों के पुण्यों के कारण नरक लोक में फल भोग रही आत्माओं को अनूठी शांति मिली। यह देख उन्होंने देवदूतों से कहा, 'मुझे स्वर्ग न ले जाओ, यहीं रहने दो। यदि मेरे कारण इनका दोष कम होता है, तो मेरा यहीं रहना सार्थक होगा।'

इस घटना से यही शिक्षा मिलती है कि बिना सोचे-समझे किसी पर आरोप लगाना और उसका अपमान करना घोर पाप कर्म है।

●●●

53.

पक्षी से सीख

अवधूत दत्तात्रेय हर क्षण किसी से ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्पर रहा करते थे। वह पशु-पक्षियों एवं कीट-पतंगों की गतिविधियों को बड़े ध्यान से देखा करते और विवेचना कर उनसे शिक्षा प्राप्त किया करते। दत्तात्रेय अकसर कहते थे, 'जिनसे मैं कोई भी शिक्षा लेता हूँ, वे मेरे गुरु हैं।'

एक दिन वे वन जा रहे थे। रास्ते में एक वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान् का स्मरण करने लगे। अचानक उनकी दृष्टि आकाश की ओर गई। उन्होंने देखा कि एक पक्षी आगे-आगे उड़ा जा रहा है और एक दर्जन पक्षी उसका पीछा कर रहे हैं। पीछा करने वाले पक्षी आगे के पक्षी से अलग नस्ल के हैं। दत्तात्रेय ने ध्यान से देखा कि आगे वाले पक्षी की चोंच में रोटी का टुकड़ा है और उसे छीनने के लिए ही सभी पक्षी उसका पीछा कर रहे हैं। इस क्रम में कुछ पक्षी चोंच मारकर उसे घायल कर रहे हैं। पक्षियों के आक्रमण से लहूलुहान हुए उस पक्षी ने अचानक चोंच से रोटी का टुकड़ा गिरा दिया। पीछा कर रहे किसी अन्य पक्षी ने उस टुकड़े को लपक लिया। अब अन्य पक्षी उसे

घेरकर चोंच मारने लगे। पहले वाला पक्षी चोंचों के प्रहार से लहूलुहान हुआ नीचे उतरकर एक वृक्ष पर बैठ गया।

दत्तात्रेय ने हाथ जोड़कर उसे संकेत करते हुए कहा, 'हे पक्षी, आज तू भी मेरा गुरु हुआ। मैंने तुझसे आज यही सीखा है कि संसार में जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए ज्यादा लोग अधिकार जताते हों, उसे छोड़ देना ही उचित है।'

●●●

54.

पाप नहीं लगेगा

त्रिशिरस ऋषि पुत्र थे, लेकिन असुरों के कुसंग में पड़कर वे दुष्कर्मों में रत रहने लगे। वे एक ओर असुरों के साथ सुरापान करते, दूसरी तरफ देवताओं को यज्ञ से मिलने वाला भोजन (हवि) हड़प जाते थे। हवि के अभाव में देवता भूखे रह जाते। वे दुर्बल होने लगे। देवराज इंद्र भाँप गए कि त्रिशिरस के दोहरे आचरण के कारण देवताओं को हवि नहीं मिल रहा है। देवराज ने निश्चय किया कि वे इस पथभ्रष्ट ब्राह्मण कुमार का वध करेंगे।

एक दिन इद्र इंद्र त्रिशिरस के आश्रम जा पहुँचे। उन्होंने कहा, 'तुम कुसंग के कारण ब्राह्मण की जगह असुर हो गए हो। तुम्हारे कर्म धर्म के विपरीत हैं। तुम्हारे पापों का घड़ा भर चुका है।' यह कहकर उन्होंने त्रिशिरस का सिर काट डाला।

त्रिशिरस की हत्या होते ही उसके साथ के ब्राह्मणों ने कहा, 'इंद्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा है। उन्हें इस पाप का प्रायश्चित्त करना होगा।'

कुछ भ्रमित ऋषियों ने भी इंद्र को पाप का भागी घोषित कर डाला। अब इंद्र ने वृक्षों, पृथ्वी और दैवी शक्ति का आह्वान किया। देवताओं के प्रकट होने पर इंद्र ने पूछा, 'क्या अधर्म में लगे रहने वाले त्रिशिरस की हत्या का मुझे पाप लगेगा?'

वृक्ष देवता ने उत्तर दिया, 'धर्म व मर्यादा का हनन करनेवाला कोई व्यक्ति ऋषि या ब्राह्मण नहीं होता, वह पापी होता है।'

पृथ्वी ने कहा, 'त्रिशिरस के क्रूर कर्मों के कारण जो पाप हुआ है, उसकी मैं साक्षी हूँ।'

दैवी शक्ति ने कहा, 'वह देवताओं से छल करता था। उसकी हत्या पुण्य दायक है।'

●●●

55.

अनूठी दरियादिली

हजरत अबू बकर मदीना के खलीफा थे। वे पता लगाया करते थे कि शहर में कोई आदमी भूखे पेट तो नहीं सोता है। कहीं किसी व्यक्ति को अभाव का जीवन तो नहीं बिताना पड़ रहा है। पता लगते ही वे चुपचाप अभावग्रस्त की

मदद करने के लिए स्वयं पहुँच जाते। वे अपने वजीर से कहा करते थे कि जरूरतमंद की सहायता करना प्रत्येक इनसान का फर्ज है। इससे बड़ा धर्म कोई नहीं।

एक बार हजरत साहब को पता चला कि एक झोंपड़ी में नि:संतान मियां-बीवी रहते थे, लेकिन पति के मर जाने से वृद्धा के सामने रोटी तक की समस्या पैदा हो गई है, क्योंकि उसके पास आमदनी का कोई साधन नहीं है। खलीफा सवेरे उसकी झोंपड़ी में पहुँचे। झोंपड़ी में झाड़ू लगाकर उन्होंने सफाई की, वृद्धा के खाने के लिए खजूर और अन्य सामान रखा, फिर चुपचाप लौट गए। वृद्धा सोकर उठी। उसने झोंपड़ी में रखा सामान देखा, तो सोचा कि कोई दरियादिल आदमी उसकी बेबसी पर दया करके सामान रख गया होगा। हजरत रोज सुबह चुपचाप जरूरत का सामान लेकर जाते, झोंपड़ी की सफाई करते और वापस लौट आते।

एक दिन महिला ने सोचा कि इस दरियादिल इनसान को देखना चाहिए। सुबह जैसे ही उसे किसी के आने की आहट हुई कि वह झोंपड़ी के दरवाजे पर पहुँची। उसने दीया जलाया और रोशनी में देखा कि उसकी सेवा करने वाले स्वयं खलीफा हैं। उन्हें देखकर उसकी आँखों में खुशी के आँसू आ गए।

●●●

56.

अनूठी शर्तें

अयोध्या में एक साधारण ब्राह्मण परिवार में जन्मे अश्वघोष प्रभावशाली कवि थे। उनकी विद्वत्ता की सुगंध दूर-दूर तक फैली हुई थी। मगध के राजा ने उनकी ख्याति सुनी, तो उन्हें सादर आमंत्रित किया और राजकवि की पदवी दी। अश्वघोष ने भगवान् बुद्ध के जीवन पर आधारित महाकाव्य की रचना की।

मगध राज्य की समृद्धि से चिढ़कर आस-पास के कई राजा उनके विरोधी बन गए, लेकिन शनै:-शनै: मगध को दुर्भाग्य ने घेरना शुरू कर दिया। मौका पाकर राजा कनिष्क ने पूरी तैयारी कर राज्य को चारों ओर से घेर लिया। राजा व प्रजा को लगने लगा कि किसी भी दिन कनिष्क की सेना राज्य पर कब्जा कर लेगी, लेकिन महाराजा कनिष्क बहुत धर्मपरायण शासक थे। अंतिम दिनों में वे स्वयं भगवान् बुद्ध के अहिंसा के सिद्धांत में विश्वास करने लगे थे। उन्होंने एक दिन एक दूत को पत्र देकर मगध के राजा के पास भेजा। दूत ने वहाँ जाकर बताया कि कनिष्क खून-खराबा को पाप मानते हैं। उनकी दो शर्तें हैं। उन्हें स्वीकार कर युद्ध टाल लें।

राजा ने शर्त सुनाने को कहा। दूत ने पत्र पढ़ना शुरू किया, 'हम हिंसा को अधर्म मानते हैं। युद्ध टालने के लिए दो शर्तें हैं। भगवान् बुद्ध द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला भिक्षापात्र तथा राजकवि अश्वघोष हमें उपहार में दे दें। हम लौट जाएँगे।'

मगध के राजा ने खुशी-खुशी शर्तें मान लीं। कनिष्क ने अश्वघोष को बौद्ध सभा का अध्यक्ष बनाया।

मगध सम्राट् को संतोष था कि उसके राजकवि को इतना प्रमुख सम्मान मिला।

●●●

57.

दैत्यों का संहार

अरुण नामक एक पराक्रमी दैत्य था। उसके मन में देवताओं को जीतने की धुनसवार हुई। उसने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप किया। उसके कठोर तपस्या से देवलोक हिल उठा। घबराए हुए देवता ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की। ब्रह्माजी हिमालय पर पहुँचे और दैत्य से वर माँगने को कहा। उसने कहा कि मुझे अमरत्व प्रदान किया जाए।

ब्रह्माजी बोले,'वत्स, संसार में जन्म लेने वाला मृत्यु को अवश्य प्राप्त होगा। दूसरा वर माँगो।'

अरुण ने कहा, 'वर दें कि मैं न तो युद्ध में मरूँ, न ही किसी अस्त्र-शस्त्र से मेरा विनाश हो और न ही किसी स्त्री या पुरुष के हाथों मेरी मृत्यु हो।'

ब्रह्माजी 'ऐसा ही होगा' कहकर अंतर्धान हो गए।

अब दैत्य का अहंकार पराकाष्ठा पर पहुँच गया। उसने आसुरी सेना को इकट्ठा किया और देवलोक पर चढ़ाई कर उसे अपने अधिकार में ले लिया।

देवता भागकर भगवान् शंकर की शरण में पहुँचे। उन्हें बताया कि किस तरह अरुण ने देवताओं के अस्तित्व पर खतरा पैदा कर दिया है।

भगवान् शिव ने कहा, 'भगवती भुवनेश्वरी की उपासना करो।' देवताओं ने भगवती भुवनेश्वरी की उपासना आरंभ कर दी। देवताओं की उपासना से प्रसन्न होकर आदिशक्ति जगन्माता प्रकट हुईं। उन्होंने कहा, 'आप सभी निश्चिंत हो जाएँ। मैं धर्म, देवताओं व सत्पुरुषों के लिए चुनौती बने उस दैत्य का संहार भ्रमरों (विषैले कीटों) से करूँगी।'

देखते ही देखते भ्रमरों के समूह ने अरुण व उसकी सेना को घेर लिया। कीटों के विषैले डंकों ने उनका समूल नाश कर दिया।

देवता भ्रामरी देवी की जय-जयकार कर उठे।

●●●

58.

देवी यज्ञ का महत्त्व

राजा जनमेजय एक बार वेदव्यासजी के चरणों में बैठकर सत्संग कर रहे थे। व्यासजी ने विस्तार से उन्हें भगवती देवी के विभिन्न रूपों की जानकारी दी और बताया कि सभी अवतारों तथा देवादिदेव शिवजी ने भी अनेक बार देवी की आराधना और कृपा प्राप्त करके सफलता पाई।

राजा जनमेजय ने प्रश्न किया, 'देवी की कृपा प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले यज्ञ में किन-किन बातों का

ध्यान रखा जाना चाहिए?'

व्यासजी ने बताया, 'यदि शुद्ध द्रव्य अर्थात् पूर्ण ईमानदारी और परिश्रम से अर्जित कमाई को यज्ञ में लगाया जाता है और पूर्ण शास्त्रीय विधि-विधान तथा शुद्ध मंत्रों से आहुति दी जाती है, तो यज्ञ का सुफल मिलता है। अन्याय द्वारा उपार्जित धन से यदि पुण्य कार्य किए जाएँ, तो इस लोक में यश की प्राप्ति तो नहीं होती, परलोक में भी उसका फल नहीं मिलता।' व्यासजी ने कई उदाहरण देकर बताया कि अन्याय से अर्जित धन से किए गए यज्ञों से देवी-देवता प्रसन्न नहीं, रुष्ट होते हैं। उन्होंने कहा, 'यज्ञ करने वाले को सर्वप्रथम मन को काम, क्रोध, लोभ जैसे दुर्गुणों से मुक्त कर शुद्ध बनाना चाहिए। जब यज्ञकर्त्ता इंद्रियों के विषयों का परित्याग कर पवित्र हो जाए, तभी यज्ञ करे। सदाचारी ही देवी-कृपा का अधिकारी होता है।'

उन्होंने बताया, 'किसी का अहित करने के उद्देश्य से किया गया यज्ञ विनाशकारी होता है। अतः परमार्थ और धर्मरक्षार्थ ही यज्ञ करना चाहिए।'

यज्ञ का महत्त्व सुनकर राजा जनमेजय ने विधिपूर्वक देवी-यज्ञ करने का संकल्प लिया।

●●●

59.

वृद्धा की सीख

सिकंदर की महत्त्वाकांक्षा थी कि वह सभी देशों को जीतकर विश्व विजेता का सम्मान प्राप्त करे। उसने सेना के बल पर अनेक छोटे-छोटे देशों को युद्ध की चुनौती दे डाली। खून-खराबा कर उसने कई देशों पर अधिकार कर लिया। लोग सिकंदर को क्रूर और खूनी समझकर उसके नाम से काँप उठते थे। एक वृद्धा जब सिकंदर की क्रूरता सुनती, तो उसे बहुत दुःख होता। वह कहा करती, 'दूसरे का खून बहाकर इकट्ठा की गई संपत्ति से कभी सुख-शांति नहीं मिलती। कोई सिकंदर को यह बात क्यों नहीं बताता?'

एक दिन सिकंदर ने एक नगर को चारों तरफ से घेर लिया। जब उसे भूख लगी, तो उसने एक मकान का दरवाजा खटखटाया। दरवाजा एक वृद्धा ने खोला। सैनिक वेष में खड़े व्यक्ति को देखकर ही वह समझ गई कि यह सिकंदर है।

सिकंदर ने कहा, 'माँ, मैं भूखा हूँ, कुछ खाने को दो।'

वृद्धा अंदर गई और कपड़े से ढकी थाली लेकर लौटी।

सिकंदर ने कपड़ा हटाया, तो भोजन की जगह सोने के जेवरात देख बोला, 'मैंने खाना माँगा था। क्या ये मेरी भूख मिटा सकते हैं?'

वृद्धा ने निर्भीकता से कहा, 'यदि तुम्हारी भूख रोटियों से मिटती, तो तुम अपना घर व देश छोड़कर यहाँ संपत्ति लूटने क्यों आते? मेरे जीवन की कमाई का यह सोना ले जाओ, पर मेरे नगर पर चढ़ाई न करो।'

वृद्धा के शब्दों ने सिकंदर को झकझोर दिया। वह उनके चरणों में झुक गया।

वृद्धा ने प्रेम से उसे भरपेट भोजन कराया। सिकंदर उस नगर को जीते बिना ही वापस चला गया।

•••

60.

सत्य ही ईश्वर है

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम समय-समय पर लक्ष्मण, सीता और हनुमानजी को खुशहाल जीवन जीने के उपदेश दिया करते थे। एक दिन उन्होंने उपदेश देते हुए कहा, 'जगत में सत्य ही ईश्वर है। धर्म की स्थिति सत्य के आधार पर टिकी रहती है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई पुण्य कार्य नहीं है। दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद सबका आश्रय सत्य है, इसलिए सबको सत्यपरायण होना चाहिए।'

राजा के धर्म पर प्रकाश डालते हुए श्रीराम ने कहा, 'सत्य का पालन करना और दया करना राजा के प्रधान कर्म हैं। सत्य में ही संपूर्ण जगत प्रतिष्ठित है। इसीलिए समस्त धर्मशास्त्रों व ऋषि-मुनियों ने सत्य पर अटल रहने की प्रेरणा दी है।'

जगज्जननी सीता को संबोधित करते हुए प्रभु कहते हैं, 'हे सीते, माता-पिता और गुरु प्रत्यक्ष देवता हैं। इनकी अवहेलना कर अदृश्य देवताओं की आराधना कैसे लाभकारी हो सकती है? जिनकी सेवा से अर्थ, धर्म और काम तीनों की प्राप्ति होती है, उन माता-पिता के समान इस संसार में दूसरा कोई भी नहीं है।' श्रीराम कहते हैं, 'जो माता-पिता और आचार्य (विद्वानों) का अपमान करता है, वह यमराज के वश में पड़कर पाप का फल भोगता है।'

जीवन के प्रति आसक्ति त्यागने की प्रेरणा देते हुए प्रभु कहते हैं, 'मृत्यु साथ ही चलती है और साथ ही बैठती है। जीवन सदा उसके वश में होता है। इसलिए हर क्षण काल को याद रखते हुए सत्कर्मों में लीन रहना चाहिए।'

•••

61.

विशुद्ध मन परमतीर्थ है

आदि शंकराचार्यजी ने धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। वह ज्ञान की साक्षात् मूर्ति थे। बड़े-बड़े विद्वान् उनकी ख्याति सुनकर उनके पास पहुँचा करते थे। हर कोई उनसे अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए लालायित रहा करता था।

एक बार एक जिज्ञासु उनके पास अपनी समस्याओं को लेकर पहुँचा। उसने प्रश्न किया, 'दरिद्र कौन है?'

शंकराचार्यजी ने बताया, 'जिसकी तृष्णा असीमित है, वह दरिद्र है।'

उस जिज्ञासु ने दूसरा प्रश्न किया, 'धनी कौन है?'

उत्तर मिला, 'जो पूर्ण संतोषी है, वही धनी है। संतोष से बड़ा धन दूसरा नहीं है।'

शंकराचार्यजी से पूछा गया, 'जीवित रहते हुए भी कौन मर चुका है?'

जवाब था, 'उद्यमहीन और निराश व्यक्ति ही जीवित होते हुए भी मृतक के समान हैं।'

श्री शंकराचार्य बताते हैं, 'श्रुतिजनित आत्मज्ञान को सांसारिक बंधन कहते हैं। सच्चरित्रता सबसे महत्त्वपूर्ण भूषण है। विशुद्ध मन परम तीर्थ है। कामिनी कंचन की आसक्ति पतन का कारण बनती है। सत्संग, दान, सद्विचार और संतोष ब्रह्म प्राप्ति के सरल साधन हैं। सच्चा संत वही है, जो समस्त विषयों से वीतराग, मोहरहित और ब्रह्मनिष्ठ है।'

शंकराचार्यजी ने कहा, 'प्राणियों का ज्वर चिंता है। विवेकहीन व्यक्ति मूर्ख है। जो ब्रह्म की प्राप्ति कराती है, वही विद्या है। जिसने मन को जीत लिया, समझो, उसने जगत को जीत लिया।'

●●●

62.

व्यावहारिक बनो

शेख सादी खुदा की याद में मस्त रहने वाले फकीरों के सत्संग के लिए तत्पर रहा करते थे। एक बार उन्हें पता चला कि बसरा शहर में एक उच्च कोटि के महात्मा रहते हैं। वे सद्गृहस्थ हैं और अपनी बीवी और परिवार के साथ रहा करते हैं। वे हर समय तस्बीह (माला) पर खुदा का नाम जपते रहते हैं। शेख सादी अपने साथियों को साथ लेकर उनके घर पहुँचे। रात का समय था। उस सद्गृहस्थ ने कमरे में पहुँचते ही सबके हाथ चूमे। सबको पास बिठाया और स्वयं भी बैठ गए। उनसे न पानी के लिए पूछा और न भोजन के लिए। रात भर बैठे-बैठे वे तस्बीह पर खुदा का नाम जपते रहे। शेख यह प्रतीक्षा करते रहे कि वह कभी माला रखकर उपदेश देंगे। किंतु वह सज्जन माला जपने में ही लगे रहे। उन्होंने कोई बात नहीं की।

सुबह हुई, तो वे सभी वापस लौटने के लिए खड़े हुए। उस सद्पुरुष ने फिर उनके हाथ चूमे। शेख सादी का एक साथी मुँहफट था। उसने विनयपूर्वक उनसे कहा, 'पवित्र कुरान में कहा गया है कि अतिथि का सत्कार करना, घर आने वाले से रोटी-पानी के लिए आग्रह करना किसी भी व्यक्ति का परम कर्तव्य है। यदि आप दर्शन करने के उद्देश्य से इतनी दूर से आए हम लोगों को रोटी खिला देते और कुछ उपदेश दे देते, तो हम संतुष्ट हो जाते। क्या हमें रातभर भूखे पेट रखने का आपको अपराध नहीं लगेगा?' इतना सुनते ही उस व्यक्ति का विवेक जाग उठा और उन्होंने इस चूक के लिए क्षमा माँगी।

●●●

63.

माँ के दर्शन कराओ

राक्षसराज रावण के वध के बाद विभीषण को लंका सौंपने के उपरांत श्रीरामलक्ष्मण, सीताजी और हनुमान सहित अवधपुरी के लिए रवाना हुए।

पुष्पक विमान को कुछ समय के लिए किष्किंधा में रोका गया, तो हनुमान ने श्रीराम से कहा, 'प्रभु, आज्ञा हो, तो मैं समीप की पहाड़ी पर रहने वाली अपनी माता के दर्शन कर आऊँ।'

प्रभु ने कहा, 'हनुमंत, हमने ऐसा कौन सा अपराध किया है, जो तुम हमें अपनी माताजी के दर्शन से वंचित रखना चाहते हो? अंजना तुम्हारी ही नहीं, हम सबकी माँ हैं।'

यह सुनते ही हनुमान गद्गद हो उठे। सभी माता अंजना के पास पहुँचे। हनुमान ने माता के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और परिचय देते हुए कहा, 'माँ, ये भगवान् श्रीराम और माता जानकी हैं। साथ में लक्ष्मणजी भी हैं। राक्षसराज रावण ने माता सीता का हरण कर लिया था। हम सब रावण और उसके पुत्रों को मारकर माता सीता को मुक्त कराकर लौट रहे हैं।'

पुत्र के शब्द सुनते ही माता अंजना ने कहा, 'अरे हनुमान, तूने मेरे दूध को लज्जित कर दिया। क्या तुझमें सामर्थ्य नहीं थी कि अकेले ही उस राक्षस को पकड़ लाता, उसे मच्छर की तरह मसल डालता, लंकापुरी को अकेला ही नष्ट कर डालता, जो तुमने भगवान् को कष्ट दिया?'

श्रीराम ने कहा, 'माताजी, हनुमान अकेले ही सबकुछ कर सकते थे, किंतु हम दोनों भाई रावण का संहार करने का श्रेय लेना चाहते थे। इसलिए उन्हें ऐसा नहीं करने दिया।'

माता अंजना ने तीनों को आशीर्वाद देकर विदा किया।

●●●

64.

सत्य का प्रभाव

एक चांडाल संतों के सत्संग के कारण भगवान् की भक्ति में लीन रहने लगा। वह वीणा लेकर मंदिर में भक्तिगीत गाया करता था। एक दिन वह मंदिर की ओर जा रहा था। अचानक उसके शरीर को किसी ने जकड़ लिया। उसने पूछा, 'तुम कौन हो? मुझे क्यों जकड़ा है?'

उसने उत्तर दिया, 'मैं ब्रह्मराक्षस हूँ। कई दिनों से भोजन न मिल पाने के कारण भूखा हूँ। तुझे खाकर अपनी भूख मिटाऊँगा।'

चांडाल भगवान् के भजन के लिए लालायित था। उसने कहा, 'मेरा प्रतिदिन का नियम है कि मैं भगवान् की संगीतमय प्रार्थना करता हूँ। मैं अपने आराध्य की उपासना करके लौट आऊँ, तब मुझे खा लेना।'

राक्षस का हृदय पिघल गया और उसने उसे मुक्त कर दिया। चांडाल ने भगवान् के विग्रह के समक्ष नाच-गाकर कीर्तन किया। अंत में उसने अपने एक मित्र से कहा, 'आज आखिरी भेंट है। मैं राक्षस की भूख मिटाने जा रहा हूँ।'

मित्र ने उसे समझाया कि भावावेश में तुम्हें ऐसा पागलपन नहीं करना चाहिए।

चांडाल ने जवाब दिया, 'सत्य सबसे बड़ा धर्म है। मैंने वापस लौटने का वचन दिया है। उसे पूरा अवश्य

करूँगा।' चांडाल राक्षस के समक्ष उपस्थित होकर बोला, 'मैं वापस लौट आया हूँ। अब तुम अपनी भूख मिटा लो।'

राक्षस उसका सत्यपालन और भगवान् के प्रति निष्ठा देखकर दंग रह गया। वह गिड़गिड़ाकर बोला, 'यदि तुम मुझे अपने संचित पुण्यों में से एक दिन का पुण्य दे दो, तो मेरे तमाम पाप नष्ट हो जाएँगे।'

चांडाल ने ऐसा ही किया। देखते-ही-देखते राक्षस की मुक्ति हो गई।

●●●

65.

अहंकार ने लज्जित कराया

देवराज इंद्र के कोषाध्यक्ष कुबेर अपने को देवकोष का मालिक समझ धन कानिजी स्वार्थ में उपयोग करने लगे। एक दिन वे भगवान् शिव के पास पहुँचे और कहा, 'महादेव, मैं एक भव्य भोज का आयोजन कर रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि उसमें समस्त देवगण, यक्ष, गंधर्व आदि भाग लें और सभी वहाँ से तृप्त होकर लौटें। कृपया आप भी सपरिवार पधारें।'

शंकरजी समझ गए कि कुबेर अहंकारग्रस्त हो चुके हैं। उन्होंने कहा, 'मैं तो नहीं आ पाऊँगा, न पार्वती ही आ पाएँगी, किंतु गणेशजी को भेज दूँगा।'

गणेशजी भोज में जा पहुँचे। उन्होंने जाते ही कुबेर से कहा, 'मुझे भूख लगी है। सबसे पहले मुझे भोजन कराएँ।'

गणेशजी के क्रोध से परिचित कुबेर ने उनकी थाली जल्दी ही परोस दी। गणेशजी ने भोजन शुरू किया, तो खाते ही चले गए। देखते-ही-देखते तमाम व्यंजन समाप्त होने लगे। कुबेर यह देख घबरा गए। अन्य अतिथि क्या भोजन करेंगे, यह सोचकर उन्होंने भोजन परोसना रुकवा दिया।

गणेशजी क्रोधित होकर बोले, 'दावा कर रहे थे कि कोई भी अतृप्त नहीं लौटेगा। मुझ अकेले का पेट नहीं भर पाए।'

कुबेर कैलाश की तरफ भागे। वे शिवजी के चरणों में गिरकर भोज यज्ञ की रक्षा करने की प्रार्थना करने लगे, तभी गणेशजी वहाँ पहुँचे और अपने पिता से कहा, 'मुझे किस दरिद्र के भोज में भेज दिया?'

शंकरजी ने कहा, 'कुबेर, अहंकार के कारण तुम्हें लज्जित होना पड़ा है।'

कुबेर शंकरजी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगे।

●●●

66.

गालियाँ अपने पास रख

भगवान् बुद्ध एक बार मगध के एक गाँव में पहुँचे। गाँव का मुखिया दुर्व्यसनों में लिप्त रहता था। देवी को प्रसन्न करने के नाम पर वह मूक पशुओं की बलि देता था। बुद्ध ने अपने उपदेश में हिंसा और दुर्व्यसनों का विरोध किया, तो वह आग-बबूला हो उठा। उसने गाँव वालों से उन्हें भिक्षा न देने को कहा। बुद्ध को इसकी भनक लग गई। वे भिक्षा माँगने मुखिया के घर ही जा पहुँचे।

मुखिया ने उन्हें देखते ही आवेश में अपशब्द कह डाले। वह बोला, 'भीख माँगते हुए लज्जा नहीं आती? धर्म के नाम पर लोगों को मूर्ख बनाते हो।'

बुद्ध ने मुसकराते हुए कहा, 'वत्स, हम दुर्गुण दूर कर सद्गुण ग्रहण करने का उपदेश देते हैं। दुर्व्यसन, अहंकार, घृणा त्यागकर सत्कर्म करो, तभी मानव जीवन सफल होगा।'

बुद्ध के इन वचनों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने चिल्लाकर कहा, 'भिखमंगे, तू यह नहीं जानता कि किसके सामने खड़ा है। मैं इस गाँव का मालिक हूँ। यहाँ से निकल जा। इसी में तेरी भलाई है।'

महात्मा बुद्ध ने धैर्य के साथ कहा, 'मैं तुम्हारे पास भिक्षा माँगने आया था, तुमने उसके बदले गालियाँ दीं। मैं इन गालियों को स्वीकार नहीं करता। इन्हें तुम अपने पास ही रखो।'

बुद्ध के शब्दों ने मुखिया के हृदय को झकझोर दिया। वह उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा।

बुद्ध ने उसे उपदेश देते हुए कहा, 'निरीह पशुओं की हत्या घोर पाप है। मांस-मदिरा से बुद्धि भ्रष्ट होती है। सत्य का पालन और दया भावना ही कल्याणकारक है।'

●●●

67.

गुरु-शिष्य में युद्ध

एक बार महर्षि गालब गलतफहमी के कारण चित्रसेन गंधर्व से रूठ गए। उन्होंने द्वारिका पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण से कहा, 'चित्रसेन ने मेरा घोर अपमान किया है। मैं जीवित रहने की स्थिति में नही हूँ।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'आप निश्चिंत रहें। चित्रसेन अब जीवित नहीं रहेगा। मैं अपने हाथों से उस ऋषि-द्रोही का वध करूँगा।'

देवर्षि नारद को जब यह जानकारी मिली, तो उन्होंने तुरंत चित्रसेन को जाकर बताया कि श्रीकृष्ण उसके वध की प्रतिज्ञा ले चुके हैं। नारदजी ने उसे सुभद्रा और अर्जुन की शरणागत होकर प्राण बचाने की विधि बताई।

चित्रसेन ने किसी युक्ति से सुभद्राजी से वचन ले लिया कि वे उसके प्राणों की रक्षा करेंगी और सुभद्राजी के इस वचन की रक्षा के लिए अर्जुन तत्पर हो उठे।

धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को समझाया कि भगवान् श्रीकृष्ण से विरोध उचित नहीं, लेकिन अर्जुन ने कहा, 'मैं शरणागत को दिए वचन से हटने का पाप मोल नहीं ले सकता।'

अंतत: श्रीकृष्ण और अर्जुन आमने-सामने आ डटे। युद्ध का भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया। अर्जुन ने भगवान् शंकर से मदद की गुहार लगाई। महादेव प्रकट हुए। उन्होंने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की, 'अर्जुन आपका परम भक्त है।

भक्तों के आगे अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाना तो आपका सहज गुण है। अर्जुन के प्राण की रक्षा में ही आपका गौरव है।'

श्रीकृष्ण भगवान् शंकर की ओर देखकर मुसकराए और अर्जुन को गले से लगा लिया। उन्होंने चित्रसेन को अभयदान दे दिया।

●●●

68.

मुक्ति का साधन

संत फजील-बिन-अयाज युवावस्था में शरारती थे। एक फकीर के सत्संग नेउन्हें दुर्गुणों से मुक्ति दिलाई। उनका मन हर समय भगवान् की याद में खोया रहने लगा और वे दीन-दुखियों की सेवा के लिए तत्पर रहने लगे। आगे चलकर वे सिद्ध फकीर के रूप में प्रसिद्ध हुए।

एक दिन खलीफा हारूं-अल-रशीद उनके सत्संग के लिए पहुँचे। उन्होंने गुजारिश की, 'अल्लाह ने आप पर असीमित कृपा की है। मुझे अपने जीवन के अनुभव की कुछ नसीहतें देने की कृपा करें।'

संत अयाज ने बताया, 'एक दिन मैंने अल्लाह से चाहा कि वह मुझे सरदार बना दे। उसने मुझे इंद्रियों का सरदार बना दिया। सभी इंद्रियाँ मेरे अधीन रहने लगीं। इंद्रियों के अधीन रहकर मैं जो गलत कार्य करता था, वे सारे छूट गए। एक दिन फिर मैंने अल्लाह से कहा कि मुझे निजात (मुक्ति) पाने का तरीका बताएँ। उन्होंने कहा, 'बूढ़ों की सेवा कर, बीमारों और असहायों की मदद कर। नेकी करने से निजात मिल जाएगी।' मैंने ऐसा ही किया। मुझे निजात मिल गई। अल्लाह ने मेरे कल्याण का साधन बताते हुए कहा कि किसी का दिल कभी न दु:खाना। खुद ही कल्याण हो जाएगा। मैंने उस दिन से वही किया।'

खलीफा ने कुछ धन उनके चरणों में रखा, तो वे बोले, 'बिना हक का धन दोजख (नरक) में डालता है। इसे वापस ले जाएँ।' खलीफा ने ऐसा ही किया और उनसे अमूल्य नसीहत लेकर वे वापस लौट गए।

●●●

69.

आशीर्वाद की शक्ति

कुरुक्षेत्र के मैदान में पांडव और कौरव सेना आमने-सामने डटी हुई थी। अचानक धर्मराज युधिष्ठिर निहत्थे ही कौरव पक्ष की ओर चल दिए। पांडव और अन्य सैनिक युधिष्ठिर को शत्रु पक्ष की ओर जाते देखकर आश्चर्य में पड़ गए।

युधिष्ठिर सबसे पहले गुरुदेव द्रोणाचार्य की ओर बढ़े। उनके समक्ष झुककर हाथ जोड़ते हुए आशीर्वाद की याचना की। गुरु द्रोण ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर ने आगे बढ़कर भीष्म पितामह के चरणों में सिर नवाया और विनम्रता से बोले, 'विवशता में आप जैसे मार्गदर्शक और पितामह से युद्ध को प्रवृत्त होना पड़ रहा है। क्षमा माँगने और आशीर्वाद लेने आया हूँ।'

भीष्म पितामह ने मुसकराते हुए सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया।

अर्जुन रथ पर सवार थे। उन्होंने यह देखा, तो उनके मुख पर चिंता की लहर दौड़ गई। वे युद्ध में अपने कौशल और शौर्य दिखाने को उत्सुक थे और समझ नहीं पा रहे थे कि युधिष्ठिर को आखिर क्या हो गया है? वे क्यों शत्रु पक्ष के धुरंधरों के चरणों में झुक रहे हैं? सारथी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन की मनोदशा समझ गए और बोले, 'पार्थ, युधिष्ठिर ने गुरु और पितामह का आशीर्वाद प्राप्त कर आधा महाभारत जीत लिया है। शेष तुम्हारे शौर्य और युद्ध-कौशल से जीता जाएगा।'

अर्जुन समझ गए कि श्रीकृष्ण की प्रेरणा से ही धर्मराज युधिष्ठिर शत्रु खेमे में आशीर्वाद लेने पहुँचे थे।

●●●

70.

पहुँचे हुए सिद्ध

रानी रासमणि ने भट्टाचार्य महाशय (स्वामी रामकृष्ण परमहंस) को उनकी प्रारंभिक अवस्था में काली माँ की सेवा के लिए अपने मंदिरों में पुजारी नियुक्त किया। अपने निश्छल हृदय तथा कठोर साधना से परमहंसजी ने काली माँ का आशीर्वाद प्राप्त करने में इतनी सफलता प्राप्त कर ली कि वे घंटों उनकी स्मृति में समाधिस्थ हो जाते थे। रानी रासमणि समझ गईं कि वे साधारण पुजारी नहीं, अपितु सिद्ध और त्रिकालदर्शी महात्मा हैं। वे प्रेम और विनय की साक्षात् मूर्ति हैं। इसलिए वे प्राय: मंदिर पहुँचा करतीं और उनका सत्संग करने को तत्पर रहतीं। स्वामीजी के मुख से माँ काली की भक्ति के गीत सुनकर उन्हें अनूठा रस मिलता था।

मंदिर के अन्य कर्मचारी भट्टाचार्यजी को साधारण पुजारी मानते थे। वे सभी रानी को ही मालिक मानकर उनके पैर छूकर प्रणाम किया करते थे। एक दिन रानी मंदिर पहुँचीं। उन्होंने स्वामीजी से माँ काली का भजन सुनाने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने भजन सुनाना शुरू किया। थोड़ी देर में ही वे समझ गए कि रानी का मन किसी सांसारिक मामले में उलझा हुआ है। उन्होंने तपाक से उनके मुँह पर तमाचा जड़ दिया और बोले, 'काली माँ के सामने पूरे मन और हृदय से एकाग्रचित्त होकर बैठना चाहिए।'

रानी तुरंत उनके चरणों में झुक गईं और बोलीं, 'वास्तव में आज होने वाले मुकदमे में मन पहुँच गया था। मुझे क्षमा करें।'

मंदिर के कर्मचारी पहली बार स्वामीजी की महानता को समझकर हतप्रभ थे।

●●●

71.

अपवित्र तो मैं हूँ

रामानुज शास्त्रों के परम ज्ञाता और भावुक भगवद्भक्त थे। युवावस्था में वे घंटोंशास्त्रों का अध्ययन किया करते थे। वे प्रतिदिन मंदिर की परिक्रमा करते और नदी किनारे बैठकर भगवान् की साधना में घंटों लीन रहते थे।

एक दिन पहले की तरह वे मंदिर पहुँचे और तमिल में रचा गया भगवद्भजन गाते-गाते उसकी परिक्रमा में लग गए। अचानक मैले-कुचैले वस्त्र पहने एक महिला उनके सामने आ गई। न जाने कैसे, रामानुज का अहंकार उन पर हावी हो गया। भगवान् के भजन गाने में जो शांत मुद्रा थी, वह भंग हो गई। उन्हें लगा कि यह महिला बिना नहाए-धोए आई होगी। स्नान करके आए एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण युवक के आगे-आगे उसे नहीं चलना चाहिए। वे क्रोध में भरकर बोले, 'पवित्र मार्ग को क्यों अपवित्र कर रही हो? दूर हटो यहाँ से।'

रामानुज के शब्द सुनते ही महिला ठिठककर खड़ी हो गई। धीरे से उसने कहा, 'आप पवित्र हैं, भगवान् का यह मंदिर पवित्र है, भक्तों के चरणों के कारण इस मार्ग की धूल भी पवित्र हो गई है, फिर मैं अपनी अपवित्रता लेकर कहाँ जाऊँ, आप ही बताएँ?'

महिला के शब्दों ने रामानुज को झकझोर डाला। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, 'माँ तू ठीक कहती है। वास्तव में मैंने तुझ जैसी निश्छल स्त्री को अपवित्र कहकर घोर अधर्म किया है। मैं तेरी भक्ति की पवित्रता को नहीं पहचान पाया। तूने तो मेरे मन व हृदय की अपवित्रता ही दूर कर दी। मुझे माफ कर दो।'

●●●

72.

माँ लक्ष्मी का स्वभाव

पुराणों के अनुसार, महालक्ष्मी सदाचारी, पुरुषार्थी और सत्यवादी आदि गुणों से युक्त व्यक्ति के यहाँ ही निवास करती हैं। जो व्यक्ति निराशा और हताशा त्यागकर निरंतर धर्मानुसार जीवन जीता हुआ पुरुषार्थ करता है, वह सहज ही देवी लक्ष्मी की कृपा का अधिकारी बन जाता है। कहा भी गया है, 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी।'

एक बार देवी रुक्मिणी ने लक्ष्मीजी से पूछा, 'देवी, आप किन-किन स्थानों में रहती हैं तथा किन्हें कृपा कर अनुगृहीत करती हैं?'

लक्ष्मीजी ने देवी रुक्मिणी को बताया, 'मैं उन सद्गृहस्थों के घरों में सतत निवास करती हूँ, जो जितेंद्रिय (सदाचारी), कर्तव्यपरायण, कृतज्ञ और विनम्र होते हैं। वृद्धों और गुरुजनों की सेवा में रत रहने वाले लोग मुझे बहुत प्रिय हैं। इसी तरह, जो महिलाएँ शीलवती, गुणवती और सबका मंगल चाहने वाली होती हैं, उनका संग मुझे बहुत भाता है।'

भगवती लक्ष्मी ने आगे बताया, 'जो अकर्मण्य, आलसी, दुराचारी, क्रूर कृतघ्न, वृद्धों और गुरुजनों से बैर रखने

वाले हैं, मैं उनके पास रहना पसंद नहीं करती। इसी प्रकार, जो महिलाएँ गृहस्थी के पालन-पोषण की चिंता नहीं करतीं, लज्जाहीन, अधीर, झगड़ालू और आलसी होती हैं—ऐसी स्त्रियों का घर छोड़कर मैं चली जाती हूँ।'

धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि धन का प्रतीक लक्ष्मी का अमर्यादित उपभोग घोर पाप है। लक्ष्मी अर्थात् धन का सद्कार्यों में सदुपयोग किया जाना चाहिए।

●●●

73.

यक्ष-युधिष्ठिर संवाद

पांडव अज्ञातवास कर रहे थे। एक दिन वे तालाब से पानी पीने गए। वहाँ उपस्थित यक्ष ने कहा, मेरे प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ही पानी पी सकते हो। सभी पांडव विफल हो गए। अंत में युधिष्ठिर यक्ष के पास पहुँचे। यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया, 'अचानक आए संकट से मनुष्य को कौन बचाता है?'

धर्मराज का उत्तर था, 'साहस ही कठिन परिस्थितियों में साथ देता है।'

दूसरा प्रश्न किया गया, 'किस शास्त्र को पढ़कर विद्वान् बना जा सकता है?'

उत्तर मिला, 'सिर्फ शास्त्रों का अध्ययन नहीं, विवेकी व्यक्तियों का सत्संग ही विद्वान् बनाने में सक्षम है।'

अगला प्रश्न था, 'वायु से भी तेज गति किसकी होती है?'

युधिष्ठिर का उत्तर था, 'मन की।'

अगला प्रश्न था, 'आग से तेज क्या है?'

उत्तर था, 'क्रोध अग्नि से अधिक तेजी से जला डालता है।'

यक्ष ने पूछा, 'सच्चा ब्राह्मण कौन है?'

युधिष्ठिर ने बताया, 'अच्छा चरित्र ही मनुष्य को ब्राह्मण बनाता है।'

अगला प्रश्न था, 'काजल से भी काला क्या है?'

उत्तर मिला, 'कलंक। काजल की कालिख को धोया जा सकता है, किंतु चरित्र पर लगा धब्बा धोया नहीं जा सकता।'

'दुनिया में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?'

यक्ष के इस प्रश्न पर धर्मराज ने कहा, 'प्रतिदिन मृत्यु को देखकर भी मनुष्य जीवित रहना चाहता है, यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।'

अंतिम प्रश्न था, 'मरने के बाद मनुष्य के साथ क्या जाता है?'

उत्तर था, 'धर्म।'

युधिष्ठिर के उत्तर सुनकर यक्ष गद्गद हो उठे और उन्होंने उन्हें तालाब से पानी पीने की अनुमति दे दी।

●●●

74.

सच्ची निष्ठा

लगभग सौ वर्ष पहले की बात है। वर्तमान उत्तर प्रदेश में इटावा जिले में ओरैया के तहसीलदार थे लाला जयनारायण। वे अपने वेतन का कुछ भाग गरीबों और पशु-पक्षियों के पालन-पोषण के कार्य में खर्च किया करते थे। उन्हीं दिनों क्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा। तहसीलदार के पास कुछ ग्रामीण पहुँचे। उन्होंने बताया कि गाँव में भूख से अनेक वृद्ध, महिलाएँ और बच्चे मर चुके हैं। यदि ग्रामीणों को भोजन उपलब्ध नहीं कराया गया, तो असंख्य व्यक्ति मर जाएँगे।

यह सुनकर तहसीलदार साहब ने तहसील के खजांची से कहा, 'इन्हें पाँच सौ रुपए खजाने से दे दो।

खजांची ने रुपए दे दिए, लेकिन वह तहसीलदार की दयालुता से चिढ़ गया। उसने तहसीलदार के खिलाफ प्रशासन में शिकायत दर्ज करवा दी।

एक दिन लाला जयनारायण सुबह की पूजा के लिए बैठे थे, तभी चपरासी ने आकर कहा कि कलेक्टर साहब अचानक आए हैं और आपको तुरंत बुलवाया है।

तहसीलदार साहब ने शांति से कहा, 'उन्हें जाकर कहो कि मैं पूजा-अर्चना के बाद ही आऊँगा।' फिर उन्होंने भगवान् से कहा कि मैंने खजाने के एक भी पैसे का दुरुपयोग नहीं किया। लोगों की जान बचाने के लिए ही रुपए दिलवाए हैं। आप मेरी रक्षा करें।

कलेक्टर ने खजाने का निरीक्षण किया, तो रुपए पूरे निकले। उसके कुछ ही महीने बाद लाला जयनारायण तहसीलदार का पद त्यागकर वृंदावन चले गए।

●●●

75.

यह घोर अधर्म है

कश्मीर नरेश मेघवाहन न्यायप्रिय और धर्मपरायण शासक थे। उन्होंने घोषणा की थी कि कोई भी व्यक्ति अपनी दबंगता के बल पर यदि किसी को सताएगा, तो उसे कड़ा दंड दिया जाएगा। वह स्वयं साधारण वेश में घूम-घूमकर प्रजा के दु:ख-दर्द का पता लगाते तथा उनकी समस्याओं का हल करके चैन की नींद सोते थे।

एक दिन राजा मेघवाहन वनवासियों के इलाके से गुजर रहे थे कि उन्हें एक बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी। वह कह रहा था, 'मेरे प्राण बचाओ।'

राजा आवाज की दिशा में चल पड़े। कुछ दूर पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक क्रूर अंधविश्वासी व्यक्ति ने बालक को पेड़ से बाँध रखा है। वह तंत्र-मंत्र का पाखंड करने के बाद उसकी हत्या करना चाहता था। बालक पास रखी तलवार देखकर जान बचाने की गुहार लगा रहा था।

राजा मेघवाहन ने यह घोर पापपूर्ण दृश्य देखकर कड़कती आवाज में कहा, 'अरे पापी, छोड़ इस मासूम बच्चे को। किसी निरीह-बालक के प्राण लेना घोर अधर्म है।'

उस व्यक्ति ने कहा, 'मेरा एकमात्र पुत्र असाध्य रोग से ग्रस्त है। किसी तांत्रिक के बताने पर मैं उसके प्राण बचाने के लिए इस बालक की बलि लेना चाहता हूँ।'

राजा बोले, 'यदि तू अपने बच्चे को बचाने के लिए इसके प्राण लेना चाहता है, तो इसके बदले मेरे प्राण ले ले।'

अचानक राजा को उस व्यक्ति की जगह एक देवपुत्र खड़ा दिखाई दिया। उसने कहा, 'राजन्, मैं तो आपकी परीक्षा ले रहा था। वास्तव में आप दयालु और न्यायप्रिय हैं।'

●●●

76.

डाकू का प्रायश्चित्त

उतंक मुनि भगवान् विष्णु के परम भक्त थे। वह सौबीरनगर के एक मंदिर में रहकर भगवान् की भक्ति, शास्त्राध्ययन तथा गृहस्थजनों को सदुपदेश देने में लगे रहते थे। राजा मुनि के त्याग-तपस्यामय जीवन से बहुत प्रभावित था। उसने उस मंदिर को तीर्थ मानकर सोने का शिखर भेंट किया।

उस क्षेत्र में डाकू कणिक का बहुत आतंक था। वह धनी लोगों के घर धावा बोलकर लूटपाट करता था। एक दिन वह अपने गिरोह के साथ मंदिर के पास से निकला, तो सूर्य की किरणों से चमचमाते स्वर्ण शिखर को देखकर रुक गया। उसने सोचा, जब मंदिर का शिखर सोने का बना है, तो यहाँ रहने वाले पुजारी के पास भी अवश्य धन होगा। कणिक ने उसी रात मंदिर पर धावा बोल दिया। हाथ में तलवार लिये वह मंदिर में घुस गया। उसने देखा कि एक महात्मा मंदिर में बैठे भगवान् के ध्यान में लीन हैं। उसने महात्मा पर तलवार तानते हुए कहा, 'सोना हमारे हवाले करो, अन्यथा काट डालूँगा।'

मुनि निर्भीक संत थे। वे ध्यान लगाए बैठे रहे। कणिक ने उन्हें धक्का देकर पटक दिया, लेकिन उसने देखा कि मुनि की आँखों से तेज बरस रहा है। उसके हाथ से तलवार बरबस ही छूटकर गिर पड़ी। वह मुनि के सामने हाथ बांधकर खड़ा हो गया।

मुनि उतंक ने मुसकराते हुए उससे पूछा, 'भैया, तुम लूटपाट क्यों करते हो? किसी को सताकर प्राप्त किए गए धन से भला कभी नहीं होता।'

पश्चात्ताप से भरे कणिक ने सिर पटक-पटककर अपनी जान दे दी। मुनि ने उसके शव पर भगवान् विष्णु का चरणामृत छिड़क दिया। कणिक को मुक्ति मिल गई।

●●●

77.

सुनो नहीं, अमल करो

एक व्यक्ति भगवान् बुद्ध के सत्संग के लिए अकसर आया करता था। वह बहुत उत्सुकता से उनके उपदेश सुना करता। बुद्ध उपदेश में प्राय: कहते, 'लोभ, दोष और मोह पाप के मूल हैं। हिंसा करना और असत्य बोलना घोर अधर्म है। यदि सच्ची शांति चाहते हो, तो इन दुर्गुणों को त्याग दो। क्रोध करनेवाला कभी शांति नहीं पा सकता।'

वह व्यक्ति भगवान् बुद्ध के उपदेश तो सुनता, लेकिन दुर्गुणों को त्याग नहीं पा रहा था। हर क्षण उसका मन अशांत रहता था। एक दिन वह भगवान् बुद्ध के पास पहुँचा और कहा, 'भगवन्, मैं काफी दिनों से आपका उपदेश सुनता आ रहा हूँ, लेकिन उनका प्रभाव नहीं पड़ा। मन बड़ा अशांत रहता है।'

बुद्ध ने मुसकराकर पूछा, 'तुम कहाँ केरहने वाले हो?'

उसने कहा, 'श्रावस्ती का।'

'यहाँ से श्रावस्ती कितनी दूर है?' बुद्ध ने अगला सवाल किया।

व्यक्ति ने दूरी बता दी तो बुद्ध ने उससे फिर पूछा, 'तुम अपना रास्ता जानतेहो?'

उसने कहा, 'खूब अच्छी तरह।'

तब भगवान् बुद्ध ने पूछा, 'रास्ता जानने के बाद उस पर चले बिना क्या तुम श्रावस्ती पहुँच सकते हो?'

उसने उत्तर दिया, 'वहाँ पहुँचने के लिए चलना तो पड़ेगा।'

बुद्ध ने कहा, 'वत्स, सिर्फ प्रवचन सुनने या कल्याण का मार्ग जानने से कुछ नहीं होता, तुम्हें उस पर चलना पड़ेगा। उन्हें अपने आचरण में ढालो, फिर देखना कि किस तरह तुम्हारा मन शांति का अनुभव करता है।'

उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया और उसका कल्याण हो गया।

●●●

78.

नशा त्यागो

संत कबीरदास करघे पर कपड़ा बुनते रहते थे। उनके पास प्रतिदिन कई जिज्ञासु आते थे, जिन्हें तर्कपूर्ण प्रमाण देकर वे कल्याण का मार्ग सुझाते। अपने पास आने वालों को वे दुर्व्यसनों से सदैव दूर रहने की प्रेरणा दिया करते थे।

एक बार तीर्थयात्रा करते हुए कुछ साधु काशी पहुँचे। वे कबीर के दर्शन के लिए भी पहुँचे। वे चिलम सुलगाकर तंबाकू पीने लगे। कबीर ने साधु से पूछा, 'तंबाकू के नशीले धुएँ से तुम्हें क्या फायदा होता है?' उसने कहा, 'कुछ क्षण के लिए मस्ती में खो जाता हूँ।'

कबीर ने कहा, 'पागल, इस विषैले पदार्थ के कारण तू अपने शरीर को जला रहा है। यदि वास्तव में सच्ची मस्ती का अनुभव करना चाहता है, तो राम नाम का नशा चढ़ाकर देख। तंबाकू का विष मन-मस्तिष्क और शरीर को विकृत करता है, जबकि भगवान् के नाम का नशा उसे पवित्र करता है।'

कबीर के शब्दों ने जादू का काम किया और उस साधु ने चिलम फेंककर भविष्य में नशा न करने का संकल्प लिया।

एक बार एक व्यक्ति ने कबीरदास से पूछा, 'बाबा, भला संसार के प्रपंच में फँसकर भगवान् को कैसे याद किया जा सकता है?'

कबीर ने कहा, 'ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहि। ऐसे जग जन में रहैं, हरि को भूलत नाहिं, जैसे पत्नी पीहर में दूर रहते हुए भी पति के ध्यान में लीन रहती है, उसी प्रकार मनुष्य संसार के कार्यों में जुटे रहते हुए भी भगवान् के चिंतन में क्यों नहीं लगा रह सकता?'

●●●

79.

संत की अनूठी निर्भीकता

रोम में एक संत थे बाजिल। वे लोगों को सदाचार व धर्म के अनुसार चलने की प्रेरणा देने के साथ ही अन्याय के आगे न झुकने पर भी जोर देते थे। रोमन सम्राट् बहुत दुर्व्यसनी और अत्याचारी था। उसके कर्मचारी प्रजा पर जुल्म करते थे। सम्राट् चौबीसों घंटे नशे में धुत रहकर मौज-मस्ती में लगा रहता था। जो कोई उसका विरोध करता, उसे फाँसी पर लटका दिया जाता।

राजा के अत्याचारों की घटनाएँ सुनकर संत बाजिल ने खुलकर उसका विरोध शुरू कर दिया। राजा तक यह बात पहुँची। वह जानता था कि संत का जनता पर अमिट प्रभाव है। यदि उनके साथ सख्ती बरती गई, तो प्रजा विद्रोह पर उतारू हो जाएगी।

राजा ने अपने दूतों द्वारा उन्हें संदेश भिजवाया, 'आप कुटिया में रहकर दयनीय जीवन बिता रहे हैं। आपके नाम संपत्ति कर दी जाएगी। जीवन आनंदमय बीतेगा। राजा का विरोध बंद कर दो।'

एक दूत ने यह भी धमकी दे डाली कि अगर राजा अपनी मरजी पर उतर आया, तो आपको देश से निकाल देगा।

संत बाजिल ने राजा को कहलाया, 'मैं इस देश की प्रजा का दिया खाता हूँ। मेरा कर्तव्य है कि उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहकर अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देता रहूँ। राजा मेरे शरीर को नष्ट कर सकता है, आत्मा को नहीं।'

यह बात सुनकर राजा का विवेक जाग उठा। पहली बार उसका पाला एक निर्भीक महात्मा से पड़ा था। वह स्वयं उनकी कुटिया में पहुँचा और भविष्य में अत्याचार न करने का संकल्प लिया।

●●●

80.

स्वार्थ पतन का कारण

ईसा मसीह जैतून पहाड़ पर अकेले बैठे हुए थे। अचानक उनके कुछ शिष्य वहाँ पहुँचे। एक ने प्रश्न किया, 'समाज में अधर्म बढ़ता जा रहा है। स्वार्थ भावना पनप रही है। संसार का भविष्य क्या होगा?'

ईसा मसीह ने कहा, 'वास्तव में मनुष्य स्वार्थ में अंधा होता जा रहा है। इससे एक-दूसरे पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। जाति पर जाति और राज्य पर राज्य चढ़ाई करेंगे। जगह-जगह अकाल पड़ेंगे और भूकंप होंगे। परिणामस्वरूप जन-धन की व्यापक हानि होगी। अधर्म के पनपने से नए-नए 'मसीह' पैदा करने की होड़ भी बढ़ेगी। बहुत से लोग मेरे नाम से कहेंगे कि मैं ही मसीह हूँ। झूठे भविष्यवक्ता भ्रम फैलाते दिखाई देंगे। ऐसी स्थिति में तुम सबको सावधानीपूर्वक इन भ्रमों से दूर रहना चाहिए। यदि तुमसे कोई कहे कि वह (मसीह) जंगल या कोठरियों में है, तो विश्वास न करना। जो अंत तक धीरज धरे रहेगा, अविचल रहेगा, वस्तुतः उसी का उद्धार होगा।'

ईसा ने भविष्यवाणी की, 'अंतिम समय में कठिन दिन आएँगे। मनुष्य स्वार्थी, लालची, डींगे हाँकने वाला और अभिमानी बन जाएगा। वह असंयमी, विश्वासघाती और कृतघ्न बन जाएगा। परमेश्वर से प्रेम करना छोड़कर सुख-विलास का दास बन जाएगा। लोग भक्ति का दिखावा तो करेंगे, लेकिन परमेश्वर के आदेश को नहीं मानेंगे। इसलिए ऐसे लोगों से दूर रहना।'

●●●

81.

सच्चे संन्यासी बनो

वंदे मातरम और आनंदमठ के रचयिता बंकिमचंद्र चटर्जी की विद्वता और प्रतिभा से प्रभावित होकर अंग्रेज सरकार ने उन्हें न्यायाधीश नियुक्त किया था। पद पर रहते हुए उन्होंने जनता पर किए गए अत्याचार के आरोप में अनेक गोरे अफसरों को दंडित कर अपनी निर्भीकता और निष्पक्षता का परिचय दिया था।

बंकिम बाबू के एक मित्र ने संन्यास ले लिया। वह गृहस्थ जीवन त्यागकर गेरुआ वस्त्र पहनकर रहने लगे। एक दिन अचानक वह बंकिम बाबू के घर पहुँचे। बंकिमचंद्र ने संन्यासी का खड़े होकर सम्मान किया और आदर से बिठाया। वे धर्म संबंधी चर्चा करने लगे। मौका पाते ही संन्यासी ने कहा, 'मैं अपने एक रिश्तेदार के किसी कार्य के लिए आपका सिफारिशी पत्र चाहता हूँ।' यह सुनते ही बंकिम बाबू ने कहा, 'आप गृहस्थी त्यागकर संन्यासी बने हैं। अब भला आपको किसी रिश्तेदार के हित की चिंता क्यों सता रही है? संन्यासी को तो सांसारिक प्रपंचों से दूर रहते हुए केवल भक्ति-साधना में लीन रहना चाहिए। यही संन्यास की सार्थकता है।' बंकिम बाबू के शब्द सुनकर संन्यासी को पसीना आ गया।

बंकिम बाबू ने आनंदमठ लिखा, तो अंग्रेज अधिकारी कुपित हो उठे। बंकिम बाबू तो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को लेकर भी उपन्यास लिखना चाहते थे। उन्होंने अपने एक मित्र से कहा था, 'मैं इतिहास की इस तेजस्वी वीरांगना पर लिखना चाहता हूँ, किंतु जब आनंदमठ से ही गोरे साहब बिगड़े हुए हैं, तो इसे कैसे सहन करेंगे?'

●●●

82.

पाप की कमाई

वड़ोदरा (गुजरात) के शेखड़ी गाँव में संत रवि साहेब एक आश्रम में रहते थे।

वे ग्रामीण बच्चों को पढ़ाते, रोगियों का इलाज जड़ी-बूटियों से करते, फिर जो समय बचता, उसमें भगवान् की भक्ति किया करते थे। दूर-दूर से भक्तजन उनके दर्शन-सत्संग के लिए आया करते थे। उस क्षेत्र में कबाजी डाकू का बहुत आतंक था। एक दिन उसके हृदय में संत रवि साहेब के दर्शन की लालसा जगी। वह साधारण वेश में आश्रम पहुँचा और संतजी के मुख से भगवत भजन सुनकर आह्लादित हो उठा। संत को बीमार लोगों की सेवा करते देख उनके प्रति उसकी श्रद्धा और बढ़ गई। उसने निर्णय लिया कि वह संतजी का सत्संग किया करेगा।

एक दिन कुछ संत कीर्तन करते हुए शेखड़ी की ओर जा रहे थे। डाकू कबाजी ने उन्हें देखा, तो समझ गया कि सभी संत आश्रम जा रहे हैं। उसने सोचा कि इन संतों की सेवा के लिए भोजन और धन लेकर जाना चाहिए। वह मिठाई और धन लेकर आश्रम पहुँचा। संत ने पूछा, 'तू कौन है?' कबाजी ने कहा, 'मैं कबाजी हूँ।' संतजी ने कहा, 'कबाजी, तू अपराध कर्म से और निर्दोषों की हत्याकर धन इकट्ठा करता है। हम तेरे इस अपवित्र धन से बने भोजन को स्पर्श भी नहीं करेंगे। पापपूर्ण कमाई के भोजन से हमार बुद्धि भ्रष्ट हो जाएगी।' संत के शब्दों ने ऐसा जादू किया कि कबाजी ने तलवार उनके चरणों में डाल दी और बोला, 'आज से मैं लूटपाट नहीं करूँगा। संत-महात्माओं की सेवा और भजन में जीवन बिताऊँगा।' संतजी ने उसे हृदय से लगा लिया।

●●●

83.

सुख प्राप्ति का साधन

आचार्य चाणक्य राजनीति के प्रकांड पंडित थे। समय-समय पर राजा से लेकर साधारण व्यक्ति तक उनसे अपनी जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त किया करते थे। एक दिन एक विद्वान् पंडित उनके सत्संग के लिए पहुँचे। उन्होंने प्रश्न किया, 'आचार्य, दुनिया में भाग-दौड़ और अर्थ संचय की प्रतिस्पद्र्धा चल रही है। आखिर लोग इससे क्या प्राप्त करना चाहते हैं?' चाणक्य ने उत्तर दिया, 'सुख।'

उस पंडित ने फिर पूछा, 'वास्तविक सुख मिलता कैसे है?' आचार्य ने कहा, 'धर्मपूर्वक सात्त्विक जीवन व्यतीत करने से। धर्मानुसार जीवन उसी शासन में संभव है, जिसकी बागडोर अपने देश के सदाचारी शासक के हाथों में हो। बाहरी शासन में न धर्मानुसार जीवन जीया जा सकता है और न ही व्यापार संभव है।'

उनसे फिर प्रश्न पूछा गया, 'आचार्य, स्वाधीन राष्ट्रों का स्वराज्य अक्षुण्ण कैसे रह सकता है?' आचार्य चाणक्य का उत्तर था, 'चरित्र बल से। भ्रष्ट और स्वार्थी लोगों के हाथों में यदि सत्ता आएगी, तो स्वराज्य सुराज न होकर कुराज हो जाएगा और इसका दुष्परिणाम शासक तथा प्रजा, दोनों को भोगना ही पड़ेगा। अत: राष्ट्रीय संकल्प लेकर

जो शासक स्वयं सदाचार का पालन करता हुआ जनता का कल्याण करता है, उसे किसी संकट का सामना नहीं करना पड़ता।' आचार्य चाणक्य ने चंद शब्दों में ही धर्म और राष्ट्रीयता का सारगर्भित संदेश दे दिया।

●●●

84.

महिला संत की प्रेरणा

दक्षिण भारत की महिला संत औव्वैयार बचपन में ही अनाथ हो गई थीं। एक सद्गृहस्थ संत ने, जो प्रभु भक्ति के गीत रचते थे, उनका पालन-पोषण किया। अपने धर्मपिता के भक्ति गीतों ने औव्वैयार को भगवत् भक्ति की प्रेरणा दी। दस वर्ष की आयु होते ही वे भी भक्ति गीतों की रचना करने लगीं। अपने इष्ट देवता विघ्नेश्वर की पूजा-उपासना में लीन रहतीं। कठोर तप और साधना के बल पर उन्हें अलौकिक सिद्धि प्राप्त हुई।

अनेक बीमार और दु:खी उनके पास पहुँचते, तो वे उन्हें जड़ी-बूटियों से निर्मित औषधि देतीं और भगवान् का भजन करने और सात्त्विक जीवन जीकर निरोगी बनने की प्रेरणा देतीं। वे स्वयं गाँवों और नगरों का भ्रमण कर लोगों को सदाचार का उपदेश देतीं। एक बार वे किसी गृहस्थ के द्वार पर भिक्षा माँगने पहुँचीं। उन्होंने देखा कि पति-पत्नी किसी बात पर झगड़ते हुए एक-दूसरे को कटु वचन कह रहे हैं। यह देखकर वे वापस लौटने लगीं। गृहस्वामी उन्हें पहचान गया और उनसे भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना करने लगा।

संत ने कहा, 'तुम दोनों भविष्य में न लड़ने का संकल्प लो और प्रेम से रहना सीखो, मैं तभी भोजन करूँगी। क्रोध में आकर गालियाँ देने वाले का भोजन मेरी बुद्धि को भ्रष्ट कर देगा।' दोनों ने उनके चरणों में गिरकर क्रोध त्यागने का संकल्प लिया।

संत औव्वैयार ने असंख्य व्यक्तियों को दुर्व्यसनों से मुक्त कराकर धर्म के मार्ग पर चलाया। उनहोंने कोन्नेर वेन्तन, अरने विचारम् जैसे लोकप्रिय ग्रंथ भी लिखे।

●●●

85.

मूर्ख कौन है?

श्रावस्ती में दो युवक कुसंग में पड़कर जेब काटने और लोगों को ठगने का धंधा करने लगे। वे किसी की जेब पर हाथ साफ करते और किसी दु:खी को देखते, तो तंत्र-मंत्र से सुखी बनाने का आश्वासन देकर ठग लेते थे। एक दिन उन्होंने काफी लोगों को बुद्ध के सत्संग-प्रवचन में जाते देखा। वे दोनों भी वहाँ जा पहुँचे। उनमें से एक के कान में जैसे ही बुद्ध के वचन पहुँचे, वह उस मधुर वाणी की ओर आकर्षित हो गया और चुपचाप बुद्ध का

उपदेश सुनता रहा। दूसरे ने इस बीच कई श्रोताओं की जेब साफ कर दी। लौटते समय जेब काटने वाले ने साथी से पूछा, 'तेरे पल्ले क्या पड़ा?'

उसने कहा, 'मैंने भगवान् बुद्ध के उपदेश के कारण किसी की जेब नहीं काटी।'

यह सुनकर दूसरे ने व्यंग्य से कहा, 'अरे मूर्ख, तू उपदेश से प्रभावित होकर अपने को धर्मात्मा समझ रहा है। क्या अपना और परिवार का पेट उस उपदेश से भर पाएगा?'

साथी के व्यंग्य भरे वाक्य भी उसे डिगा न सके और उसने उसका साथ छोड़ दिया। अगले दिन वह पुनः भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनने जा पहुँचा। सत्संग के बाद तथागत को उसने दोस्त से मन-मुटाव और अपने पिछले दुष्कर्मों की जानकारी देते हुए पूछा, 'मुझे परिवार का काम चलाने के लिए क्या करना चाहिए?'

तथागत ने कहा, 'अपने हाथों का सदुपयोग कर मजदूरी करो। सात्त्विक जीवन जीओ। मूर्ख तुम नहीं हो, तुम्हारा कुकर्मी साथी है मूर्ख है।'

कुछ ही दिन बाद उसका साथी अपराध करता हुआ पकड़ा गया और जेल भेज दिया गया, जबकि उस संकल्पी व्यक्ति की गणना नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में होने लगी।

●●●

86.

श्रमदान का चमत्कार

मगध राज्य में लगातार कई वर्षों तक वर्षा न होने के कारण अकाल पड़ा। फसलेंनष्ट हो गईं। खाद्यान्न के अभाव में असंख्य लोगों को काल का ग्रास बनना पड़ा।

सम्राट् चंद्रगुप्त ने परिषद् की बैठक बुलाई। महामंत्री कौटिल्य ने सुझाव दिया कि बाहर से खाद्यान्न मँगाकर लोगों के प्राणों की रक्षा की जाए। इसके अलावा जगह-जगह यज्ञ भी कराए जाएँ। वरुण देव और माँ अन्नपूर्णा को प्रसन्न करके ही इस भीषण आपदा से छुटकारा पाया जा सकता है। पाटलिपुत्र में विशाल यज्ञ की तैयारी शुरू की गई। अनेक यज्ञाचार्यों और कर्मकांड में निपुण पंडितों की उपस्थिति में यज्ञ प्रारंभ हुआ। सम्राट् चंद्रगुप्त ने पूर्ण विधि-विधान से प्रमुख यजमान की भूमिका निभाई। यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद राजा और रानी ने बंजर धरती पर हल चलाया। लाखों व्यक्तियों ने देवी-देवताओं का जयघोष कर आसमान गुंजा डाला।

आचार्य कौटिल्य ने कहा, 'राजन्, यज्ञ के माध्यम से हमने भगवान् को संतुष्ट कर लिया है। अब निश्चित रूप से वरुण देव के मेघ जल बरसाने में सक्षम होंगे, किंतु स्थायी समाधान के लिए हमें नदी से खेतों में पानी पहँचाने के लिए नहर का निर्माण करना चाहिए।'

सम्राट् ने कुदाल उठाई और नहर खोदने लगे। देखते-ही-देखते कई लोगों ने भी श्रमदान शुरू कर दिया। कुछ दिनों में नहर का विस्तार होने लगा और खेतों तक पानी पहुँचने लगा। पूरा राज्य तरह-तरह के खाद्यान्न उत्पन्न होने के कारण खुशहाल हो गया और अकाल से स्थायी मुक्ति मिल गई।

●●●

87.

कुसंग का दुष्परिणाम

ब्राह्मण किशोर भूरिश्रवा को महर्षि ऋचीक के गुरुकुल में विद्या व शास्त्रों केअध्ययन के लिए भेजा गया। ऋचीक अग्रणी तत्त्वज्ञानी और ब्रह्मनिष्ठ ऋषि थे। वे शिष्यों को भी संयम व तप के महत्त्व से परिचित कराकर सांसारिक प्रपंचों में न पड़ने की प्रेरणा दिया करते थे।

भूरिश्रवा ने अध्ययन पूरा किया, तो गुरु ने विदा करने से पूर्व उपदेश देते हुए कहा, 'वत्स, हमेशा सत्पुरुषों के सत्संग में रत रहना। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के बाद भी संयम का निरंतर पालन करना। संयम, सत्संग रूपी तप ही पथभ्रष्ट होने से बचाता है।'

भूरिश्रवा का शुचिता नामक शीलवान कन्या से विवाह हुआ। कुछ दिन वे धर्ममय जीवन बिताते रहे, फिर दुर्व्यसनी के संग के कारण संध्या, गायत्री, वेदाध्ययन छूटता गया। पत्नी के समझाने के बावजूद वे अधर्म के कर्मों में लगे रहे। नगर के लोग उनसे घृणा करने लगे। उनका तेज, धन, यश—सब गायब हो गया।

आचार्य ऋचीक को इस बारे में पता चला, तो वे उसके घर जा पहुँचे। भूरिश्रवा और उनकी पत्नी ने देखते ही आदर से उन्हें बिठाया।

आचार्य ने कहा, 'वत्स, यदि तुम मेरे वचनों पर ध्यान देते, तो तुम्हारी यह गति नहीं होती। कुसंग ने तुम्हारे तेज, तप, संयम, यश—सबकुछ हर लिए हैं। इसलिए दुष्टजनों का कुसंग त्याग दो। मर्यादा एवं संयम का दृढ़ता से पालन करो।'

भूरिश्रवा गुरु के वचन सुनकर रो पड़ा। उसने दुष्टों का संग त्यागने का संकल्प लिया। संयम और तप से उसे पुन: तेजस्वी और यशस्वी बना दिया।

●●●

88.

राजा की अनूठी दृढ़ता

आमेर (जयपुर) के क्षत्रिय वंश में जन्मे टोडरमल को शेखावटी का राजा मनोनीत किया गया। वे परम धर्मात्मा थे। धीणावता की ताँबे की खान से होने वाली आय टोडरमल धार्मिक कार्यों पर खर्च कर देते थे। इससे चिढ़कर खान की देखभाल करने वाले एक अधिकारी ने दिल्ली सल्तनत से उनकी शिकायत कर दी। दिल्ली सल्तनत ने उन्हें रोका, तो राजा टोडरमल ने उसके आदेश के आगे झुकने से इनकार कर दिया। आखिरकार उदयपुर के महाराणा जगत सिंह ने उन्हें अपने राज्य में ससम्मान शरण दी।

उदयपुर के महाराणा की आमेर के राजा से तनातनी थी। वह आमेर के राजा को नीचा दिखाने के अवसर ढूँढ़ते रहते थे। एक दिन राणा जगत सिंह को अजीब सनक सूझी। उन्होंने राज्य के जंगल में आमेर के किले की नकली

आकृति बनवाई, ताकि उसे ध्वस्त कर आमेर के राजा को अपमानित कर सके। राजा टोडरमल ने महाराणा को समझाया कि इस मनोवृत्ति से शत्रुता पैदा होगी। महाराणा न माने, तो टोडरमल ने संकल्प लिया कि वे अपने पूर्वजों के आमेर का अपमान नहीं होने देंगे। वे तलवार लेकर उस कृत्रिम किले की रक्षा के लिए जा पहुँचे। महाराणा जब उस किले को ध्वंस करने पहुँचे, तो टोडरमल को उसकी रक्षा करते देख नतमस्तक होकर बोले, 'अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए आप जैसे वीरों की ही आवश्यकता है।'

आगे चलकर राजा टोडरमल ने अपने पराक्रम से राजस्थान के इतिहास में स्वर्णिम अध्याय जोड़ा।

●●●

89.

प्राण बचाए

महर्षि च्यवन वनस्पतियों की खोज में जंगल-जंगल घूमा करते थे। एक बार वेशिष्य सुश्रुत के साथ वन में बहुत दूर निकल गए। थक जाने पर वे दोनों एक वृक्ष की छाँव में विश्राम करने लगे। अचानक उन्हें स्त्रियों के रोने की आवाज सुनाई दी। दोनों ने सोचा कि कहीं कोई परिवार विपत्ति में तो नहीं फँस गया है। ऐसी स्थिति में सहायता करना मनुष्य धर्म है, यह सोचकर गुरु और शिष्य आवाज की दिशा में बढ़े। कुछ दूर पहुँचने पर उन्होंने देखा कि एक बालक जमीन पर अचेतावस्था में लेटा है और उसे घेरे उसके परिजन रो रहे हैं। पूछने पर पता लगा कि बालक के पैर में साँप ने डस लिया है। दो ओझा उसके पास बैठकर मंत्र पढ़ रहे थे। सुश्रुत ने आयुर्वेद का अध्ययन किया था। उन्होंने बालक के परिजनों से कहा, 'मंत्र पढ़ने वाले अपना काम करते रहें। मैं बालक का उपचार कर उसकी जान बचाने का प्रयास करता हूँ।'

सुश्रुत ने अपने थैले में से रस्सी निकाली। साँप के काटे हुए स्थान पर उसे बाँधकर चाकू से विषैले स्थान पर चीरा लगाया और विषाक्त खून निकाल दिया। फिर कुछ वनस्पतियों को पीसकर लेप बनाया और घाव पर लगा दिया। देखते-ही-देखते बालक ने आँखें खोल दीं।

बालक के दादा ने सुश्रुत को गले लगाते हुए कहा, 'तुम हमारे लिए देवदूत बनकर आए हो। मेरा आशीर्वाद है कि तुम अपने कुल का नाम अमर करोगे।'

आगे चलकर सुश्रुत ने चिकित्सा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए। उन्हें विश्व के पहले शल्य चिकित्सक के रूप में ख्याति मिली।

●●●

90.

श्रीनाथजी के दरबारी

उदयपुर के महाराणा के दरबारी भुवन सिंह चौहान भगवान् श्रीनाथजी के परमभक्त थे। वे प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में उठकर भगवत भजन में लग जाते और भगवान् से प्रार्थना किया करते, 'मेरे हाथों पाप कर्म न होने पाए। प्रतिदिन किसी रोगी व गरीब की अपने हाथों से सेवा अवश्य करूँ।'

भुवन सिंह की भक्ति और सेवा भावना से महाराणा बहुत प्रभावित थे।

एक दिन महाराणा जंगल में शिकार के लिए गए। उनके साथ सामंतों की टोली थी। महाराणा को हिरणी दिखाई दी। उन्होंने अपना घोड़ा उसके पीछे लगा दिया। हिरणी वृक्षों की ओट में जा छिपी। महाराणा का संकेत मिलते ही भुवन सिंह ने छिपी हिरणी पर तलवार चला दी। मरती हुई हिरणी के नेत्रों से करुण धारा बहते देख भुवन सिंह द्रवित हो उठे। उन्होंने घर लौटकर भगवान् श्रीनाथजी के समक्ष हिरणी की हत्या के लिए पश्चात्ताप किया और भविष्य में किसी निरीह प्राणी की हत्या न करने का संकल्प लिया।

महाराणा को जब यह पता लगा कि हिरणी की हत्या से भुवन सिंह को कष्ट पहुँचा है, तो वे उनकी करुणा भावना से और अधिक प्रभावित हुए। एक दिन महाराणा ने कहा, 'भुवन सिंह, वास्तव में तुम हमारे नहीं भगवान् श्रीनाथजी के दरबारी हो। आज से तुम दरबार में न आना। तुम्हारी जागीर दोगुनी की जाती है।'

भुवन सिंह ने कहा, 'राजन्, मुझे जागीर नहीं, किसी निरीह प्राणी की हत्या न करने का आपका संकल्प चाहिए।'

महाराणा ने वचन देकर उन्हें विदा किया।

●●●

91.

ज्ञान से श्रेष्ठ है कर्म

संत जरथ्रुस्त का जन्म ईरान के राजवंश में हुआ था। 15 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने संसार से विरत होकर ध्यान-उपासना का मार्ग चुन लिया। एरिमन नामक एक दुर्व्यसनी ने उन्हें डिगाने का बहुत प्रयास किया, किंतु वे धर्म मार्ग पर अडिग रहे। जरथ्रुस्त ने जगह-जगह जाकर धर्म, सदाचार, सत्य और अहिंसा का प्रचार-प्रसार किया। वैक्ट्रिया के राजा ने उनके सदाचारी विचारों से प्रभावित होकर उन्हें गुरु माना।

एक दिन कोई जिज्ञासु उनके पास पहुँचा। उसने प्रश्न किया, 'क्या ज्ञान प्राप्त करने मात्र से कल्याण संभव है?'

जरथ्रुस्त ने उत्तर दिया, 'शैतान या शैतानी मान्यताओं से बचने के लिए ज्ञान आवश्यक है, किंतु सिर्फ ज्ञान से सर्वांगीण विकास असंभव है। जीवन-यापन के लिए सेवा-परोपकार का कर्म करना आवश्यक है। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति ही अपना और समाज का भला कर सकता है।' कुछ क्षण रुककर उन्होंने फिर कहा, 'श्रेष्ठ ज्ञान उन्हें प्राप्त होता है, जो ईश्वर के लिए कार्य करते हैं। श्रेष्ठ कर्म का सुफल उन्हें ही मिलता है, जो विनम्रता और सेवा भाव से कर्मरत रहते हैं।'

संत जरथ्रुस्त संयम और सदाचार को बहुत महत्त्व देते थे। अग्नि को वे साक्षात् देवता मानते थे। उनका मत था कि संयम व सदाचार रूपी अग्नि देवता समस्त बुराइयों को भस्म करने की सामर्थ्य रखते हैं।

●●●

92.

हिंसा का दुष्परिणाम

असुरराज शंभर ने सेनापति दाम के नेतृत्व में देवलोक पर चढ़ाई कर दी और देवताओं को पराजित कर दिया। पराजित देवता ब्रह्माजी की शरण में गए।

ब्रह्माजी ने कहा, 'आप लोग धैर्य के साथ सत्कर्मों और भक्ति में लीन रहे। असुरों की हिंसा और अहंकार एक दिन उनके पतन का कारण बनेंगे।'

शंभर ने अहंकारी होकर प्रजा का उत्पीड़न करना शुरू कर दिया। चारों ओर हिंसा और अत्याचार का नंगा नाच होने लगा। असुर मांस का सेवन करते और शराब के नशे में धुत्त होकर महिलाओं की इज्जत से खेलते। प्रजा उनके आतंक से त्राहि-त्राहि कर उठी।

एक विद्‌वान् ब्राह्मण ने एक दिन शंभर और उसके सेनापति से कहा, 'सिंह स्वयं पशु का शिकार कर उसका मांस खाता है। आप लोग वधिक की जगह स्वयं अपने हाथों से पशु की हत्या कर उसका मांस खाया करें। इससे आपकी युद्‌ध करने की क्षमता बढ़ेगी।'

सेनापति उसके कहे अनुसार, स्वयं पशुओं की हत्या करने लगा। शंभर ने भी एक पशु की हत्या की। निरीह बेजुबान पशु को छटपटाते देखकर उसका हृदय काँप उठा। उसे लगा कि एक दिन उसकी भी यही दुर्दशा हो सकती है। निरीह पशुओं की आह ने असुर राजा और सेनापति की नींद उड़ा दी। उन्हें हर पल मृत्यु का भय सताने लगा। उनकी शक्ति घटने लगी।

एक दिन प्रजा के लोगों ने देवगणों के साथ मिलकर शंभर और उसके सेनापति को घेरकर मार डाला। शेष असुर तुरंत भाग खड़े हुए। देवताओं का राज्य पुन: स्थापित हो गया। अहंकार और हिंसा ही असुरों के पतन का कारण बने।

●●●

93.

कन्या है साक्षात् देवी

एक बार नारदजी की तीव्र इच्छा हुई कि गोकुल पहुँचकर बालकृष्ण के दर्शनकिए जाएँ। वे वीणा बजाते हुए नंद बाबा के घर जा पहुँचे। उन्होंने पलंग पर मस्ती भरी नींद ले रहे बालकृष्ण की सुंदर छवि देखी, तो भाव विभोर हो उठे और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। नंदजी यह दृश्य देखकर हतप्रभ रह गए। नारदजी ने कहा, 'इन्हें साधारण बालक न समझना। शिव और ब्रह्मा भी इनसे सदा प्रेम रखेंगे। आगे चलकर यह दिव्य बालक ऐसी लीलाएँ करेगा कि तीनों लोक चमत्कृत हो उठेंगे। तुम्हारा कुल अमर हो जाएगा।' आशीर्वाद देकर नारदजी लौटने लगे।

नंद बाबा के मित्र भानुजी ने यह दृश्य देखा, तो उनकी इच्छा हुई कि वे भी अपने पुत्र व पुत्री को देवर्षि का आशीर्वाद दिलाएँ। नारदजी उनके घर गए। भानु अपने पुत्र को उनके पास लाए। नारदजी ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा, 'कन्या के भी दर्शन कराओ।' वे उन्हें कमरे में ले गए। छोटी सी बच्ची का अद्‍भुत रूप देखकर देवर्षि चकित हो उठे। दर्शन करते ही वे समझ गए कि यह कन्या साक्षात् देवी स्वरूपा है। उन्होंने उसे पृथ्वी पर लिटाया और उसकी परिक्रमा की। उसके चरण स्पर्श करते ही देवर्षि के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने भानु से कहा, 'जिस घर में कन्या का प्रेमपूर्वक पालन किया जाता है, वह घर सदैव सुख-समृद्‍धि से परिपूर्ण रहता है। सभी सिद्‍धियों सहित लक्ष्मी वहाँ निवास करती हैं।'

नारदजी हरि का गुणगान करते हुए विदा हो गए।

●●●

94.

उपेक्षा का प्रायश्चित्त

अयोध्या के कुलगुरु वशिष्ठजी वनवासी श्रीराम से भेंट करने भरतजी के साथरवाना हुए। रास्ते में निषादराज गुह को संदेह हुआ कि सेना को साथ लेकर कौन लोग उधर जा रहे हैं, जिधर श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी गए हैं। वे तुरंत अपने साथियों सहित उनके पास जा पहुँचे। सबसे आगे वशिष्ठजी चल रहे थे। निषाद अपने को तुच्छ और निम्न जाति का मानता था। उसने दूर से ही गुरु वशिष्ठजी को जमीन पर लेटकर प्रणाम किया। भरतजी ने यह दृश्य देखा, तो एक वनवासी से पूछा, 'ये कौन हैं?' उसने बताया, 'ये पिछड़ी जाति के निषाद हैं। इन्होंने अपनी परम भक्ति से भगवान् श्रीराम का मन जीत लिया है। श्रीराम इन्हें अपना अनन्य भक्त मानते हैं।' यह सुनते ही भरतजी ने आगे बढ़कर निषाद को सम्मानपूर्वक छाती से लगा लिया।

निषाद बोले, 'वन में आप भटक न जाएँ, इसलिए मैं आपके साथ चलकर श्रीरामजी से आपकी भेंट कराता हूँ।' वह आगे-आगे चल पड़े। सभी श्रीराम के विश्रामस्थल पर पहुँच गए। श्रीराम भरतजी से गले लगकर मिले। आँखों से अश्रुधारा बह निकली। श्रीराम ने दूर खड़े निषाद को देखा, तो उन्हें भी छाती से लगा लिया। गुरु वशिष्ठजी ने यह दृश्य देखा, तो उन्हें लगा कि उन्होंने निषाद को साधारण वनवासी मानकर उपेक्षा की है, यह तो अधर्म और नासमझी है। अचानक निषाद की नजरें वशिष्ठजी से मिलीं। वह तुरंत भूमि पर लेटकर उनके चरणस्पर्श करने लगा। वशिष्ठ ने उन्हें उठाया और छाती से लगा लिया।

●●●

95.

संशय निवारण

भीष्म पितामह बाणों की शैया पर लेटे इच्छामृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। युधिष्ठिर अचानक उनके दर्शन करने आ पहुँचे। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर भीष्म पितामह को प्रणाम किया। पितामह की यह अवस्था देखकर उनकी आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी। भीष्म समझ गए कि उनकी इस दशा के लिए युधिष्ठिर स्वयं को जिम्मेदार समझकर दु:खी हैं। उन्होंने युधिष्ठिर की आत्मग्लानि दूर करने के उद्देश्य से कहा, 'युधिष्ठिर, सतयुग में राजा देय का राज्य था। वह कुसंग और अहंकार के कारण अपना राजधर्म भूलकर पथभ्रष्ट हो गया। धर्म एवं न्याय का मार्ग छोड़कर उसने अधर्म का रास्ता अपना लिया। देय प्रजा पर अत्याचार करने लगा। चारों ओर हाहाकार मच गया, तो ऋषियों को तपस्या छोड़कर उसका वध करना पड़ा। देय के बेटे पृथु को राजगद्दी संभालने को राजी किया गया। ऋषियों ने उसे राजधर्म की शिक्षा दी और बताया कि अन्याय का समर्थन कदापि न करना। यदि किसी के साथ सगा-संबंधी भी अन्याय करे, तो उसे दंडित करना राजा का परम धर्म है। देवताओं ने भी राजा पृथु को आश्वासन दिया कि अपराधियों व अन्यायियों को दंड देने में पाप नहीं लगता।'

भीष्म पितामह ने फिर कहा, 'वत्स, तुम-पांडवों ने धर्ममार्ग से विचलित हुए बिना कौरवों से युद्ध किया। यह धर्मयुद्ध था। अपने वचन की रक्षा के लिए मुझे कौरवों का साथ देना पड़ा। तुमने जो वध किए हैं, वे सर्वथा धर्मानुसार थे, इसलिए मन से हीन भावना निकाल दो।'

●●●

96.

धन ही तो बाधा है

गोपाल्लव नामक सेठ हर समय धनार्जन में जुट रहता था। जैसे-जैसे उसकीसंपत्ति बढ़ती गई, धन कमाने की उसकी लालसा भी बढ़ती गई। परोपकार और धार्मिक कार्यों पर धन खर्च करने में वह विश्वास नहीं रखता था। भोग-विलास और ऐश्वर्य ने गोपाल्लव को अनेक बीमारियों से ग्रस्त कर दिया। असाध्य रोग से ग्रस्त होने पर वह सोचने लगा कि उसने कभी अच्छा कर्म नहीं किया, पूजा-उपासना नहीं की। अंतिम समय में इस धन का क्या होगा? सेठ इसी चिंता में डूबा हुआ था कि उसे अचानक भगवत भजन सुनाई पड़ा। भजन में कहा गया था कि मरते समय न परिजन साथ जाते हैं और न धन-संपत्ति। केवल भक्ति और सत्कर्म ही कल्याण करते हैं।

सेठ ने सेवक से कहा, 'बाहर बैठकर भजन गाने वाले को अंदर बुलाना।'

सेवक ने कहा, 'वह कोई संगीतकार नहीं, बल्कि जूते गाँठने वाला है। वह मस्ती में भगवान् की प्रशस्ति के गीत गाता है।'

सेठ ने उसे आदर सहित अंदर बुलवाया और स्वर्ण मुद्राएँ देते हुए कहा, 'तुम्हारे भजन ने मुझे शांति प्रदान की है। कल फिर आकर गीत सुनाना। इनाम दूँगा।'

तीन दिन बाद वह आदमी सेठ के पास आया और उसे स्वर्ण मुद्राएँ वापस लौटाते हुए बोला, 'इन स्वर्ण मुद्राओं की चिंता में मैं भगवान् के भजन से विमुख हो गया। संपत्ति और धन के रहते अनूठा आनंद मिलना असंभव है।'

इन शब्दों ने सेठ गोपाल्लव का विवेक जगा दिया। उसने अपनी तमाम संपत्ति गरीबों में दान कर दी और भगवान् की भक्ति में लग गया। उसका शरीर भी निरोग हो गया।

●●●

97.

सत्य-धर्म पर अटल रहो

गोरखनाथ संप्रदाय के संत योगिराज बाबा गंभीरनाथजी पहुँचे हुए संत थे।धर्मशास्त्रों के प्रकांड ज्ञाता होने के बावजूद अहंकार उन्हें छू भी न पाया था। वे विनम्रता की साक्षात् मूर्ति थे और हमेशा प्रभु के स्मरण और योग-साधना में लीन रहते थे। कपिलधारा स्थित आश्रम में रहकर बाबा योग-साधना कर रहे थे। कुछ शिक्षित बंगाली तीर्थयात्री कपिलधारा पहुँचे, तो बाबा के दर्शन के लिए आश्रम आए। बाबा ने बड़े प्रेम से उन्हें आसनों पर बैठने का संकेत किया। उन सबने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'बाबा, आप सर्वशास्त्रों के ज्ञाता और महान् सिद्ध संत हैं। हम गृहस्थों का कल्याण कैसे हो, यह उपदेश देने की कृपा करें।'

बाबा ने मुसकराते हुए कहा, 'मैं स्वयं कुछ नहीं जानता। अभी तो जानने का प्रयास शुरू किया है, फिर क्या उपदेश दूँ?' कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा, 'कल्याण उपदेश मात्र से नहीं, अपने आचरण और धर्मानुसार जीवन जीने से होता है।'

उनमें से एक व्यक्ति ने पुनः विनम्रता से पूछा, 'महाराज, आप जैसी विभूति के श्रीमुख से कुछ पवित्र शब्द सुनकर हम सबको प्रेरणा मिलेगी। हमें निराश न कीजिए।'

बाबा ने कहा, 'सदाचार का पालन करते हुए अपने कर्तव्य की पूर्ति करते रहने वाले, सत्य और धर्म पर अटल रहने वाले का सहज ही कल्याण हो जाता है।'

बाबा गंभीरनाथजी की सरलता और निरभिमानता ने सभी को बहुत प्रभावित किया। वे उन्हें साष्टांग प्रणाम कर खुशी-खुशी वापस लौट गए।

●●●

98.

तलवार नहीं उठी

राजगृह में कारु कसूरी नामक कसाई रहता था। वह पशुओं का मांस बेचकरअपनी जीविका चलाता था। राजगृह में बौद्ध संत आते रहते थे। वह कभी-कभी उनके दर्शन के लिए भी चला जाता था। संत अहिंसा को सर्वोपरि धर्म बताकर किसी भी प्रकार की हिंसा न करने की प्रेरणा दिया करते थे। कारु कसूरी कहता था कि वह अपने पुरखों के

धंधे को कैसे छोड़ दे?

एक दिन कारु ने एक मोटे-तगड़े भैंसे के सिर पर तलवार चलाई। तलवार छिटककर पास खड़े उसके बेटे सुलस के पैर पर लगी। बालक दर्द से कराह उठा। पिता ने यह देखा, तो सोचा कि जब बेटे को मामूली चोट से इतनी पीड़ा हुई, तो पशुओं पर क्या बीतती होगी? उसने पशुओं का वध करना छोड़ दिया, लेकिन कुछ दिनों बाद साथियों के उकसावे पर उसने फिर वही काम शुरू कर दिया।

कारु कसाई की मृत्यु का समय आया, तो उसने अपनी तलवार बेटे को सौंप दी। कसाइयों की पंचायत में सुलस से कहा गया कि कुलदेवी की प्रतिमा के समक्ष भैंसे की बलि दो। सुलस का हृदय पशुओं के वध के समय उसकी छटपटाहट देखकर द्रवित हो उठता था। अत: उससे तलवार नहीं उठी। कसाइयों के मुखिया ने दोबारा उससे कहा, 'बेटे, यह हमारी कुल परंपरा है। देवी को प्रसन्न करने के लिए रक्त निकालना पड़ता है।'

सुलस ने भैंसे की जगह अपने पैर पर तलवार का वार कर दिया। पैर से खून बहने लगा। उस दिन के बाद उसके परिवार में पशु वध बंद कर दिया गया।

●●●

99.

सदाचार ही धर्म है

ईसा मसीह प्रेम, दानशीलता और उदारता को स्थायी शांति और संतोष प्राप्त करनेका साधन मानते थे। एक बार किसी दूर देश के भक्त उनके दर्शन के लिए पहुँचे। उन्होंने उनसे स्वर्ग प्राप्ति का सरल साधन जानना चाहा। ईसा ने कहा, 'स्वर्ग अर्थात् ईश्वर का राज्य हर मानव के अंदर है। उसकी बाहर खोज करना समय गँवाने के समान है। जो व्यक्ति सबसे प्रेम करता है और अपने पड़ोसी के दु:ख से दु:खी और सुख से सुखी होता है, वह स्वर्ग में ही तो है। अपनी आय का कुछ अंश भूखों को भोजन और वस्त्रहीनों को वस्त्र देने का नियम बना लो, तुम्हें लगेगा कि तुम सच्चे स्वर्ग में रह रहे हो।' उन्होंने कहा, 'जब तक तुम एक बालक की भाँति अबोध तथा निश्छल नहीं हो जाते, तब तक ईश्वर के राज्य (स्वर्ग) में तुम्हारा प्रवेश वर्जित रहेगा।'

'शैलोपदेश' में ईसा मसीह ने कहा, 'धन्य वे हैं, जो धर्म के लिए भूख-प्यास सहन करते हैं। जो व्यक्ति धर्म और सदाचार पर अटल रहता है, प्रत्येक प्राणी से प्रेम करता है, बिना किसी लालच के दान देने को तत्पर रहता है, उसके लिए ईश्वर स्वयं अपने राज्य का दरवाजा खोलते हैं।'

अहिंसा को सर्वोपरि बताते हुए उन्होंने उपदेश में कहा, 'किसी की भी हत्या करना अधर्म है। जो कोई हत्या करेगा, उसे दैवीय न्याय का कोपभाजन होना पड़ेगा। मैं तो यह कहता हूँ कि जो कोई अपने भाई या पड़ोसी पर क्रोध करेगा, उसे भी दैवीय प्रकोप सहना पड़ेगा।'

●●●

100.

सच्चा साधु कौन है?

तीर्थंकर भगवान् महावीर सत्संग के लिए आने वालों से कहा करते थे, 'सांसारिक(गृहस्थी) मनुष्य को अपनी पत्नी और बच्चों के मोह में पड़कर गलत तरीके से धन अर्जित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। मोह में अंधा होकर आदमी बुरे-से-बुरे पाप करने से भी नहीं हिचकता, पर जब उसका परिणाम भोगने का समय आता है, तब वह अकेला ही दु:ख भोगता है। अत: मोह, ममता और लोभ का त्याग कर किसी भी क्षण दुष्कर्म न होने पाए—इसका प्रयास करना चाहिए।'

साधकों को संबोधित करते हुए भगवान् महावीर ने कहा, 'साधक को सदाचार का पूर्ण पालन करना चाहिए। जो निष्कपट तथा सरल होता है, उसी की आत्मा शुद्ध होती है और जिसकी आत्मा शुद्ध होती है, उसी के पास धर्म ठहर सकता है। सदाचारी, सात्त्विक और निष्कपट व्यक्ति ही साधना की अंतिम स्थिति पूर्ण निर्वाण को प्राप्त होता है।'

एक व्यक्ति ने तीर्थंकर से पूछा, 'दु:ख क्यों सताते हैं?'

भगवान् ने उत्तर दिया, 'प्राणी अपने-अपने दुष्ट कर्मों के कारण ही दु:खी होता है। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता।'

भिक्षु के लक्षण पूछे जाने पर उन्होंने कहा, 'जो कटु वचन नहीं कहता, क्रोध नहीं करता, जिसकी इंद्रियाँ अचंचल हैं, जो संयम का पालन करता है और संकट आने पर व्याकुल नहीं होता—वही भिक्षु है। भिक्षु वेश से नहीं, सद्गुणों से होता है। जो सब प्रकार का त्याग करता है, वही सच्चा संन्यासी कहलाता है।'

●●●

101.

घृणा नहीं प्रेम करो

जेन संत बेनजोई ने अपना जीवन बालकों और किशोरों को शिक्षा देने वसंस्कारित करने के काम में समर्पित किया था। वे आश्रम में अपने शिष्यों के साथ रहकर उन्हें शिक्षित किया करते थे। वे कहा करते थे, 'सभी से प्रेम करो। असहायों की सेवा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।'

एक दिन आश्रम में रहनेवाला एक लड़का चोरी करता हुआ पकड़ा गया। संत बेनजोई ने उसे चोरी की बुराइयों से अवगत कराया और क्षमा कर दिया। पहले से ही बिगड़ैल उस लड़के ने दोबारा चोरी की। अन्य शिष्य उसे पकड़कर फिर गुरु के पास ले गए। संत ने उसे पुन: क्षमा कर दिया।

शिष्यों ने उत्तेजित होकर कहा, 'यह बार-बार चोरी करता रहेगा और आप उसे माफ करते रहेंगे। यदि ऐसा है, तो हम सब आश्रम छोड़कर चले जाने पर मजबूर हो जाएँगे।'

संत ने शिष्यों की बैठक की। वे विनम्रता से बोले, 'मैंने माना कि तुम सब अच्छे हो, संस्कारी हो। कभी किसी कुसंग में न रहने के कारण दुष्कर्मों से दूर हो। यह अबोध किशोर अपने दुर्व्यसनी पिता और भाइयों द्वारा ठुकराया

हुआ है। इसे मैं सुधारने, संस्कारित करने के उद्देश्य से यहाँ लाया हूँ। मैं यह जानता हूँ कि तुम सब यदि मेरे आश्रम से चले गए, तो अन्य किसी शिक्षक से शिक्षा प्राप्त कर सकते हो, किंतु इस बिगड़ैल लड़के को कौन अपने यहाँ रखेगा? इसे सुधरने का मौका कैसे मिलेगा?'

उस किशोर ने संत के वाक्य सुने, तो उसकी आँखें छलछला आईं। उसने सबके सामने कभी चोरी न करने की प्रतिज्ञा की। आगे चलकर वह सत्कर्मों में लगा रहा।

●●●

102.

भक्ति का साधन है ज्ञान

बद्रीनाथ धाम में सनत्कुमार आदि चार ऋषि साधना में लीन थे। अचानक एकदिन देवर्षि नारद वहाँ पहुँच गए। ऋषियों ने पहली बार मुनि नारदजी के चेहरे पर चिंता की लकीरें देखीं, तो हतप्रभ रह गए।

सनत्कुमार ने नारदजी को ससम्मान बिठाया और बोले, 'देवर्षि, आप तो हर क्षण नारायण-नारायण के जाप की मस्ती में डूबे रहते हैं। आज किस कारण चिंता में डूबे हुए हैं।'

नारदजी ने कहा, 'मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि पृथ्वी लोक में भक्ति की उपेक्षा होने लगी है। सत्य, तप और दान भक्ति के प्रमुख स्तंभ हैं। लोगों ने इन्हें छोड़कर असत्य और लोभ-लालच का सहारा लेना शुरू कर दिया है।' यह कहते-कहते नारदजी की आँखों से अश्रु छलक पड़े। कुछ क्षण मौन रहने के बाद उन्होंने कहा, 'ऋषियो! भक्ति के प्रति आस्था बढ़े, इसके लिए क्या उपाय किए जाएँ—यह बताने की कृपा करें।'

सनत्कुमार आदि ऋषियों ने कहा, 'देवर्षि, भक्ति की अवहेलना को देखकर आपका चिंतित होना स्वाभाविक है। आप भगवन्नाम प्रचार के साथ-साथ धर्मशास्त्रों के स्वाध्याय की ओर मानव को प्रेरित करें। स्वाध्याय से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान ही सत्कर्मों, यज्ञादि की प्रेरणा देता है। यज्ञादि सत्कर्मों से वैराग्य की अनुभूति होती है। वैराग्य प्राप्त होते ही मानव भगवान् की निष्काम भक्ति कर मोक्ष का अधिकारी बनता है।'

मुनियों के श्रीमुख से उपदेश सुन नारदजी की निराशा दूर हो गई। वे स्वाध्याय की प्रेरणा देने में लग गए।

●●●

103.

स्वर्ग प्राप्ति का साधन

फ्रांसिस का जन्म वर्ष 1182 में इटली के एक समृद्ध परिवार में हुआ था।उनका बचपन सुख-ऐश्वर्य में बीता, लेकिन युवावस्था में वह किसी गंभीर बीमारी से ग्रस्त हो गए। अनेक इलाजों के बाद भी जब उनके बचने की आशा नहीं रही, तो उन्होंने अपने को ईश्वर को समर्पित कर दिया। एक दिन उन्हें अनुभूति हुई कि प्रभु ईसा पास खड़े होकर कह रहे हैं, 'धन-संपत्ति के मोह से मुक्त होकर अपना जीवन मानव सेवा के लिए समर्पित करने का संकल्प लो। प्रत्येक मानव से, यहाँ तक कि निरीह पशु-पक्षियों से भी प्रेम करो। मृत्यु स्वत: दूर भाग जाएगी।' इसके बाद फ्रांसिस निरोग होते गए। एक दिन उन्होंने अपने पिता बेर्नोर्डोन से कहा, 'इस शर्त पर मुझे प्रभु ईसा से जीवनदान मिला है कि मैं अपना सर्वस्व गरीबों और भटके लोगों की सेवा-सहायता में बिताऊँगा।' क्रुद्ध होकर पिता ने उसे संपत्ति से वंचित कर घर से निकाल दिया। फ्रांसिस भिक्षुक बनकर प्रेम व सहायता जैसे सत्कर्मों में जुट गए।

ईसा मसीह के जन्मदिन पर बर्नार्ड नामक एक धनी व्यक्ति ने चर्च में भव्य समारोह का आयोजन किया। फ्रांसिस ने उसे उपदेश देते हुए कहा, 'ईसा इस प्रकार के निरर्थक प्रदर्शन से खुश नहीं होंगे। उन्हें प्रसन्न करना है, तो अपनी आवश्यकता के अनुसार धन-संपत्ति अपने पास रखो, शेष गरीबों और जरूरतमंदों के कल्याण में लगा दो। यही स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा साधन है।' बर्नार्ड पर उनके शब्दों का प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपनी तमाम संपत्ति जन कल्याण में लगाने की घोषणा कर दी।

●●●

104.

सच्चे इनसान बन गए हो

शिबली इराक के एक सूबे का शासनाधिकारी था। सेवानिवृत्त होने के बादवह सूफी संत जुनैद के पास पहुँचा। उसने उनसे कहा, 'मुझे खुदा का भक्त व ईमान का पाबंद बनना है। मुझे अपना शिष्य बना लें।'

संत ने कहा, 'ईमान का पाबंद ऐसे ही नहीं बना जाता। उसके लिए मान-अपमान की भावना बिलकुल खत्म करनी पड़ती है।'

शिबली ने कहा, 'बाबा, आप जो कहेंगे, करूँगा। आदेश दें।'

सूफी जुनैद ने कहा, 'दरवेश हो जाओ। बगदाद में एक साल तक भीख माँगो।'

शिबली एक साल तक भीख माँगकर गुजारा करता रहा। लौटा, तो सूफी जुनैद ने कहा, 'तुम एक सूबे के हुक्मरान थे। जाओ, जिन लोगों का तुमने जाने-अनजाने बुरा किया, उनसे माफी माँगो।'

शिबली घर-घर जाकर माफी माँगता रहा। एक वर्ष बाद लौटकर आया, तो जुनैद ने कहा, 'अब एक वर्ष तक गरीबों, अपंगों, बीमारों और असहायों की अपने हाथों से सेवा करो, तब लौटकर आना।'

शिबली जगह-जगह जाता, बीमारों व असहायों की अपने हाथों से सेवा करता। दवाएँ व फल उनमें बाँटता। किसी को रोते देखता, तो उसका दु:ख-दर्द जानकर उसका निवारण करता। दु:खी लोग खुश होकर उसे दुआ देते। वह पूरे शहर में लोकप्रिय होता गया।

एक वर्ष बाद वह लौटा, तो सूफी जुनैद ने पूछा, 'अब तुम अपने बारे में क्या सोचते हो?'

शिबली ने उत्तर दिया, 'खुदा के तमाम बंदों में मैं खुद को सबसे छोटा मानता हूँ।'

जुनैद बोले, 'अब तुम सच्चे इनसान बन गए हो और अब खुदा के भी प्रिय हो गए हो।'

●●●

105.

गृहस्थ ही श्रेष्ठ है

महर्षि अंगिरा अपने गुरुकुल के शिष्यों को साक्षर बनाने के साथ-साथ यहमार्गदर्शन भी किया करते थे कि उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के बाद क्या करना चाहिए। गोपमाल नामक शिष्य को अध्ययन के बाद विदा करते समय महर्षि ने कहा, 'मैं जानता हूँ कि तुम विरक्त स्वभाव के हो, किंतु वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा के अनुसार गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए सांसारिक भोगों से विरक्त बने रहना।'

गोपमाल आशीर्वाद लेकर घर लौटा। माता-पिता ने मालिनी नामक एक सुयोग्य कन्या से उसका विवाह कर दिया। गोपमाल गृहस्थ होते हुए भी भगवत भक्ति में लगा रहता।

एक बार सांसारिक प्रपंच के कारण उससे कोई मर्यादा विरुद्ध कार्य हो गया। इससे उसे गृहस्थ जीवन से ऊब हो गई। उसने पत्नी से कहा, 'गृहस्थ में रहकर धर्म का पालन असंभव है। मैं जंगल में जाकर भजन साधना करूँगा। तुम सास-ससुर की सेवा करना।'

गोपमाल चुपचाप रात को घर से जाने लगा। आहट सुनकर पत्नी भी पीछे-पीछे चल दी। उसने पत्नी को आते देखा, तो बोला, 'तुम नारी हो, जंगल की कठिनाइयाँ नहीं सहन कर पाओगी।' लेकिन वह नहीं मानी और दोनों गुरु अंगिरा के पास पहुँचे।

महर्षि ने कहा, 'गृहस्थी में रहते हुए छोटे-मोटे पाप अनजाने में होते ही रहते हैं। संयम का अभ्यास करो। वृद्ध माता-पिता को छोड़कर जंगल में तपस्या करना ठीक नहीं।'

गुरु के वचन ने दोनों का विवेक जगा दिया। वे घर लौटकर मर्यादाओं का पालन करने लगे। आगे चलकर गोपमाल ने अग्रणी साधक के रूप में ख्याति अर्जित की।

●●●

106.

असुर वध का उपाय

दैत्य हिरण्यकश्यपु के कुल में निकुंभ नामक दैत्य था। उसके पुत्र सुंद औरउपसुंद महापराक्रमी थे। दोनों ने विंध्य पर्वत पर घोर तपस्या कर ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया। ब्रह्माजी ने वर माँगने को कहा। दैत्यों ने कहा, 'हमें ऐसा वर दीजिए कि समस्त मायाओं को हम वश में कर लें। साथ ही अमरत्व प्रदान करें।'

ब्रह्माजी ने कहा, 'अमरत्व किसी को प्राप्त नहीं हो सकता। हर किसी की मृत्यु अवश्यंभावी है।' उनके बार-बार आग्रह करने पर ब्रह्माजी ने कहा, 'ठीक है, मैं तुम्हें वर देता हूँ कि संसार का कोई भी प्राणी तुम्हारा संहार नहीं कर पाएगा, लेकिन यदि तुम दोनों में फूट पड़ गई, तो एक-दूसरे के हाथों मारे जाओगे।'

दोनों दैत्य अपने को अमर मानकर अहंकारवश ऋषि-मुनियों का उत्पीड़न करने लगे। दोनों से त्रस्त देवतागण ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उन्हें बताया कि उनके दिए वरदान के कारण इन दैत्यों का अत्याचार चरम सीमा को पार कर गया है। उन्होंने असुर वध की गुहार लगाई।

ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा से कहा, 'एक ऐसी सुंदर रमणी को तैयार करो, जो इनके बीच पहुँचकर इन दोनों को आकर्षित कर उनमें फूट डाल सके।'

तिलोत्तमा नामक एक सुंदरी को पढ़ा-सिखाकर दैत्य बंधुओं के पास भेजा गया। कुछ दिनों में ही उसने सुंद और उपसुंद को इतना आकर्षित कर लिया कि दोनों उससे विवाह के सपने देखने लगे। उसे लेकर दोनों भाइयों में प्रतिस्पद्‌र्धा और द्‌वेष की भावना पनपने लगी। अंत में उसे पत्नी बनाने की लालसा में दोनों आपस में ही लड़ते हुए काल का ग्रास बन गए। अन्याय का अंत हुआ और देवताओं को राहत मिल गई।

●●●

107.

दानव भस्म हो गए

एक बार मानसरोवर के तट पर देवताओं ने लोक कल्याण के उद्‌देश्य से विशालयज्ञ का आयोजन किया। इस क्षेत्र में खली नामक दानवों का आतंक था। अपने स्वभाव के अनुरूप वे सद्‌कर्मों में विघ्न डालते रहते थे। उनके उत्पात से बचने के लिए शांतिप्रिय लोग दूर-दराज के वनों में छिप जाते थे।

दानवों को जब देवताओं द्‌वारा किए जा रहे यज्ञ का पता चला, तो वे यज्ञस्थल पर पहुँचकर भीषण उपद्रव मचाने लगे। देवराज इंद्र को जब यह सूचना मिली, तो वह सेना लेकर यज्ञ की रक्षा करने पहुँच गए, लेकिन दस हजार दानवों ने इंद्र की सेना को भी भागने के लिए विवश कर दिया। कुछ दानवों ने यज्ञ के लिए घृत आदि सामग्री पहुँचाने वाली ग्रामीण महिलाओं को अचानक घेर लिया और उनसे दुर्व्यवहार करने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। आश्रमों से बाहर निकलकर ऋषियों ने कहा, 'दुष्ट दानव, महिलाएँ साक्षात्‌ देवी स्वरूपा होती हैं। इनसे दुर्व्यवहार और कदाचार करने पर समझ लो कि तुम्हारे पापों का घड़ा भरने वाला है।'

दानवों ने ऋषियों की बात अनसुनी कर उनके आश्रमों में भी उत्पात मचाना शुरू कर दिया।

देवतागण तुरंत मुनि वशिष्ठ की शरण में गए। मुनि ने जब दानवों की करतूत सुनी, तो उन्होंने कहा, 'अब इन दानवों के पापों का घड़ा सचमुच भर चुका है।' वे तुरंत मानसरोवर तट पर पहुँचे। उनके तेज से तमाम दानव भस्म हो गए। यह देखकर सभी देवताओं ने राहत की साँस ली।

●●●

108.

प्रेम ही जीवन का लक्ष्य है

चैतन्य महाप्रभु ने अपना समस्त जीवन मनुष्य को दुर्व्यसनों से मुक्त करके उन्हेंप्रेम व भगवद्‌भक्ति में लगाने के पुनीत कार्य के लिए समर्पित किया था। वे अपने भक्तों को उपदेश देते हुए कहा करते थे, 'न्याय और धर्मपूर्वक अर्थ का उपार्जन कर अपने परिवार का पालन-पोषण करते हुए भगवन्नाम संकीर्तन के बल पर मानव सहज ही में

अपने लोक-परलोक को सफल बना सकता है।'

एक बार किसी जिज्ञासु भक्त ने महाप्रभु से प्रश्न किया कि भगवान् का साक्षात्कार कैसे किया जाए? इस पर उनका कहना था, 'हमारा लक्ष्य भगवान् की प्राप्ति नहीं है। भगवान् का साक्षात्कार तो रावण, कंस और अनेक दैत्यों को भी हुआ था। रावण-कंस ने तो भगवान् श्रीराम व श्रीकृष्ण से आमने-सामने युद्‍ध भी किया था। चाणूर-मुष्टिक नामक मल्लों ने भगवान् से अखाड़े में कुश्ती लड़ते समय उनके अंग से अंग मिलाया था। हमारा लक्ष्य भगवान् की प्राप्ति नहीं, बल्कि उनके दिव्य प्रेम की प्राप्ति होनी चाहिए।' वे कहा करते थे, 'वैष्णवों और सद्‍पुरुषों की सेवा भगवान् की ही सेवा के समान है। मायाग्रस्त जीवों को भगवद-उन्मुख करना ही उनके प्रति सच्ची दया है। दुर्व्यसनियों की सेवा नहीं, उन पर दया करनी चाहिए।'

महाप्रभु ने अपने निश्छल प्रेम के माध्यम से असंख्य कुमार्गियों को दुर्व्यसनों के पाप से मुक्त करके उन्हें भगवान् का अनन्य प्रेमी बनाया। वे कलियुग में भगवन्नाम संकीर्तन को कल्याण का सबसे सरल साधन बताया करते थे।

●●●

109.

शुद्‍ध अंतःकरण तीर्थ है

महामुनि अगस्त्यजी श्रीशैल पर्वत पर अपनी पत्नी लोपामुद्रा से धर्मचर्चा कर रहेथे। लोपामुद्रा परम विदुषी थीं।

लोपामुद्रा ने प्रश्न किया, 'पतिदेव, धर्मशास्त्रों में पवित्र तीर्थों की महिमा भरी पड़ी है। तीर्थयात्रा व तीर्थ निवास को अनेक पुण्यों का प्रदाता माना जाता है। जो साधनहीन व्यक्ति, वृद्‍ध और अपाहिज तीर्थ न कर पाएँ, उन्हें इस कर्तव्य का पालन कैसे करना चाहिए?'

महर्षि अगस्त्य ने बताया, 'तीर्थ भ्रमण में मानसी तीर्थों की महिमा सर्वोपरि है। साधनहीन व्यक्ति घर बैठे ही सदाचार का पालन कर तीर्थयात्रा का पुण्य प्राप्त कर सकता है।' कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा, 'सत्य और क्षमा तीर्थ हैं। इंद्रियों को वश में रखना भी तीर्थ का पुण्य देता है। जो व्यक्ति दयावान होता है और जिसका अंत:करण शुद्‍ध-सात्त्विक होता है, वह घर बैठे ही तीर्थों का पुण्य प्राप्त करने का अधिकारी होता है।'

महर्षि ने कहा, 'यदि मन का भाव शुद्‍ध न हो, तो दान, यज्ञ, तप, शास्त्रों का श्रवण, स्वाध्याय—सभी व्यर्थ हो जाते हैं। ज्ञान रूपी जल से स्नान करके अनेक पवित्र नदियों के स्नान का पुण्य प्राप्त होता है। ज्ञान रूपी जल राग-द्‍वेषमय मल को दूर करने की अनूठी क्षमता रखता है। हे देवी! जिसका मन डाँवाँडोल रहता है, वह तीर्थ का पूर्ण फल नहीं प्राप्त कर पाता है। असंयमी, अश्रद्‍धालु व संशयात्मा कितने ही तीर्थों की खाक छान ले, उसे पुण्य कदापि नहीं मिलता।'

अपने महामुनि पति के श्रीमुख से सच्चे तीर्थों की महिमा जानकर लोपामुद्रा भाव विभोर होकर नतमस्तक हो उठीं।

●●●

110.

भाग्य सदा जागृत रहता है

एक बार माता पार्वती ने भगवान् शिव से प्रश्न किया, 'धर्म का फल किसे प्राप्तहोता है?'

शिवजी ने उत्तर दिया, 'जो हिंसा से सर्वथा विरत रहकर संपूर्ण प्राणियों से प्रेम करता है, उन्हें अभयदान देता है, सबसे सरलता का व्यवहार करता है, जो क्षमाशील और चरित्रवान है, उसे ही धर्म का फल प्राप्त होता है।'

'स्वर्ग के अधिकारी कौन होते हैं?' इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए महादेव ने कहा, 'जो दूसरों के धन से मोह नहीं रखते, पराई स्त्री से सदा दूर रहते हैं, ईमानदारी और परिश्रम से अर्जित धन से प्राप्त खाद्य पदार्थों का उपभोग करते हैं, कभी असत्य नहीं बोलते, किसी की चुगली-निंदा नहीं करते, सौम्यवाणी बोलते हैं, वही स्वर्ग के अधिकारी होते हैं।'

भगवान् शंकर ने माता पार्वती को उपदेश दिया, 'जीवन में सदा शुभ कार्य ही करना चाहिए। शुभ कार्यों से शुभ प्रारब्ध बनता है और शुभ प्रारब्ध से शुभ कर्म बनते हैं। शुभ कर्मों का फल शुभ होता है। मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही प्रारब्ध बनता है। प्रारब्ध अत्यंत बलवान होता है। उसी के अनुसार जीव भोग करता है। प्राणी भले ही प्रमाद में पड़कर सो जाए, परंतु उसका प्रारब्ध सदा जागता रहता है।'

लोभ, लालच और तृष्णा को समस्त दु:खों का कारण बताते हुए देवादिदेव महादेव ने कहा, 'तृष्णा के समान कोई दु:ख नहीं है और त्याग एवं संतोष के बराबर कोई दूसरा सुख नहीं है।'

●●●

111.

जैसा कर्म वैसा फल

ब्रह्माजी के पौत्र महर्षि कश्यप नीतिशास्त्र के महान् व्याख्याता थे। एक बार राजापुरुरवा उनसे राजधर्म का उपदेश लेने पहुँचे। महर्षि को पता था कि एक दुर्व्यसनी को सलाहकार बनाने के कारण पुरुरवा की प्रजा दु:खी है।

महर्षि कश्यप ने राजा से कहा, 'राजा को स्वयं पूर्ण सदाचारी व धर्मपरायण होना चाहिए। साथ ही प्रधानमंत्री व मंत्री ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए, जो नैतिक गुणों से संपन्न हो। दुर्व्यसनों में लिप्त प्रधानमंत्री और राजकर्मचारी प्रजा का हित नहीं कर सकते। इससे राजा के प्रति आक्रोश पनपता है।'

राजा पुरुरवा ने प्रश्न किया, 'भगवन्, पृथ्वी तो पापियों और पुण्यात्माओं को समान रूप से धारण करती है। सूर्य बुरे-भले को समान ऊर्जा देते हैं। वायु और जल भी बुरे और भले—दोनों का पोषण करते हैं, तो फिर कर्मफल में अंतर कैसे पड़ा?'

महर्षि ने कहा, 'राजन्, माँ अपने दो पुत्रों को अपना एक-सा दूध पिलाकर पुष्ट करती है, लेकिन आगे चलकर

एक पुत्र संतजनों और अच्छे लोगों का सत्संग कर सत्कर्म करता है और ख्याति प्राप्त करता है। वहीं दूसरा कुसंग में पड़कर दुर्व्यसनी बनकर अपराधों में लिप्त हो जाता है। जो सद्कर्मी होता है, उसे इस लोक में ख्याति और परलोक में शांति मिलती है। कुकर्मी इस लोक में दुत्कारा जाता है और परलोक में नरक की यातनाएँ भोगता है। इसलिए कुसंगी, दुर्व्यसनी से दूर रहना और सद्पुरुषों का संग करना बहुत आवश्यक है।'

राजा की जिज्ञासा शांत हो गई। उसने प्रजा की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया।

●●●

112.

'मैं बेसहारा नहीं हूँ'

राजा चंद्रचूड़ एक धर्मपरायण तथा न्यायप्रिय शासक थे। वे अकसर रात में वेशबदलकर जनता का हाल जानने के लिए महल से निकला करते थे और यदि किसी निराश्रित को देखते, तो उसकी सहायता करने को तत्पर हो उठते। राजा ने घोषणा कर रखी थी कि उनके राज्य में किसी भी महिला का उत्पीड़न सहन नहीं किया जाएगा।

एक दिन राजा चंद्रचूड़ को पता लगा कि एक व्यक्ति कुसंगति के कारण दुर्व्यसनी बन गया है। उसने अपनी विवाहिता पत्नी का त्याग कर किसी दूसरी महिला से विवाह कर लिया है। राजा चंद्रचूड़ ने उसे पकड़कर लाने का आदेश दिया। इस बात की सूचना मिलते ही वह व्यक्ति दूसरी पत्नी के साथ राज्य छोड़कर भाग गया।

एक दिन राजा उस पीड़ित और असहाय महिला का पता लगाकर मंत्री के साथ उसके घर पहुँचे। महिला की स्थिति देखकर वे यह सोचकर द्रवित हो उठे कि पति द्वारा ठुकराई गई यह स्त्री न जाने कैसे गुजारा करती होगी। राजा ने उससे अत्यंत विनम्रता से प्रश्न किया, 'क्या तुम बिलकुल बेसहारा हो?'

महिला ने राजा के शब्द सुने, तो बोली, 'नहीं महाराज, ऐसा बिलकुल नहीं है। मेरे तो तीन-तीन सहारे हैं।'

राजा ने पूछा, 'तुम्हारे वे तीन सहारे क्या हैं?'

महिला ने कहा, 'महाराज, मेरे हाथ, मेरा धर्म और मेरे भगवान् मेरा सहारा हैं। फिर भला मैं खुद को बेसहारा क्यों मानूँ?'

राजा उस स्वाभिमानी महिला के चरणों में झुक गए और उन्होंने उसे अपनी वाटिका को हरा-भरा रखने का दायित्व सौंप दिया।

●●●

113.

मृदु वचन सर्वोच्च-तप है

कर्नाटक में जन्मे संत बसवेश्वर भगवान् शिव के अनन्य भक्त थे। अपनेआराध्य देव शिव को वे 'कूंडल

संगमदेव' संबोधित कर उनकी आराधना किया करते थे।

एक बार वह भ्रमण करते हुए एक धनाढ्य भक्त के यहाँ पहुँचे। वह भक्त उनके प्रति अनन्य श्रद्धा भावना रखता था। उन्होंने देखा कि भीषण गरमी में जब कुछ व्यक्ति उससे मिलने पहुँचे, तो उसने न उन्हें बैठने को कहा और न ही उठकर उनका स्वागत किया। जब उस भक्त ने हाथ जोड़कर संतजी से कहा, 'कल्याण का साधन बताने की कृपा करें', तो संतजी ने कहा, 'जो अपने द्वार पर आए अतिथि से विनयवत व्यवहार नहीं करता, उससे बैठने की प्रार्थना नहीं करता, उससे जल तक ग्रहण करने को नहीं कहता, उसका कल्याण नहीं हो सकता।' चंद शब्दों में ही उन्होंने अतिथि सेवा की शिक्षा उसे दे दी।

संत बसवेश्वरजी ने भक्तों को उपदेश देते हुए कहा, 'मृदु वचन ही सर्वोच्च जप और तप हैं। भगवान् कूंडल संगमदेव को कोमल व निश्छल हृदय से ही वश में किया जा सकता है।' दुर्गुणों को त्यागने की प्रेरणा देते हुए उन्होंने कहा, 'चोरी, हिंसा, क्रोध, झूठ तथा लोभ, ये पाँच महापाप हृदय को अपवित्र करते हैं। दया, करुणा भावना, विनयशीलता, सत्य तथा भगवत् प्रेम—ये पाँच सद्गुण धारण करनेवाला व्यक्ति सहज ही में लोग व परलोक को कल्याणकारी बना लेता है।'

संत बसवेश्वरजी ने कन्नड़ भाषा में हजारों पदों की रचना की। ये वचन 'बसकोपनिषद्' नाम से जाने जाते हैं।

●●●

114.

अंतिम अभिलाषा

महाराज सगर के वंशज राजा खट्वांग परम धार्मिक और विरक्त स्वभाव के थे।उन्होंने धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। एक मुनि ने उन्हें राजधर्म का उपदेश देते हुए बताया था कि राजा को प्रजा का पालन भगवान् की भक्ति की तरह करना चाहिए। राज्य में कोई अभावग्रस्त न रहे और किसी को सताया न जाए, इसका पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए। शरणागत की रक्षा के लिए प्राणपण से तत्पर रहना राजा का परम धर्म है। राजा खट्वांग इन सभी उपदेशों का गंभीरता से पालन करते थे।

एक बार देवता असुरों से पराजित होकर उनकी शरण में पहुँचे। उन्होंने अपनी सेना सहित असुरों पर आक्रमण कर उनका उन्मूलन कर दिया। देवताओं ने कहा, 'आपने समय-समय पर हमारी सहायता कर हमें कृतार्थ किया है। आप इच्छानुसार वरदान माँगो।'

राजा ने कहा, 'मैंने तमाम इच्छाएँ भगवान् की भक्ति के कार्य में समर्पित कर दी हैं। मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि अंतिम श्वास तक अपने धर्म का पालन करता हुआ भगवान् के ध्यान में ही लगा रहूँ।' उन्होंने देवताओं से पूछा, 'कृपा कर यह बताइए कि मेरी आयु कितनी शेष है?'

देवताओं ने बताया कि 'दो घड़ी आयु ही मात्र शेष है। चाहें तो हम आपकी आयु सीमा बढ़ा सकते हैं।'

राजा खट्वांग ने भगवान् का ध्यान कर प्रार्थना की, 'प्रभु, मैंने सारा जीवन आपकी भक्ति में बिताया, प्रजा का हित साधन किया। इन अंतिम घड़ियों में मुझे शरण में ले लो।' देखते-ही-देखते उनका शरीर शांत हो गया।

•••

115.

आकांक्षाएँ पाप का कारण हैं

भगवान् बुद्ध सत्संग के लिए आने वाले विभिन्न वर्गों के लोगों की जिज्ञासाओंका समाधान कर उन्हें अपना जीवन सफल बनाने की प्रेरणा दिया करते थे। एक दिन श्रावस्ती का एक धनिक भक्त भगवान् बुद्ध के सत्संग के लिए आया। बुद्ध को पता था कि वह सेठ धर्म व सत्कर्म में समय न लगाकर हर क्षण धनार्जन में लगा रहता है।

सेठ ने हाथ जोड़कर पूछा, 'भगवन्, मुझे तप व पूजा-उपासना का उपाय बताएँ, जिससे मेरे मन को शांति मिल सके।'

बुद्ध ने कहा, 'आकांक्षाएँ और धन-संपत्ति की चाह में घिरा व्यक्ति अशांति व असंतोष को निमंत्रण देता है। जिसकी आकांक्षाएँ समाप्त नहीं होंगी, उसे किसी प्रकार की पूजा-आराधना से शांति नहीं मिल सकती। बिना परिश्रम कमाए गए धन से पनपे पापों से शुद्धि न नंगे रहने से हो सकती है और न फाका (उपवास) करने से। गलत तरीके से अर्जित धन और मन की असीमित आकांक्षाएँ तो पहले के अर्जित पुण्यों को भी समूल नष्ट कर डालती हैं।' श्रद्धालुओं को उपदेश देते हुए बुद्ध ने आगे कहा, 'सुचरित धर्म का आचरण करो। कर्मनिष्ठ बनो। आलस्य को पास न फटकने दो। दुर्व्यसनी दुष्ट मित्रों का तुरंत त्याग कर दो। सदाचारी व गुणी व्यक्तियों का संग करने से ही बुद्धि सत्कर्मों में लगी रहती है। जो व्यक्ति सच बोलता है, क्रोध नहीं करता, कुछ-न-कुछ दान करता रहता है, वह देवताओं का कृपापात्र हो जाता है। उसका हमेशा कल्याण होता है।'

सेठ की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

•••

116.

संयमी ही अजेय है

भगवान् श्रीराम ने राक्षसराज रावण, उसके पुत्रों और सेना का समूल संहार करदिया। विजय के बाद रावण के सदाचारी भक्तहृदय भाई विभीषण ने श्रीराम से कहा, 'रावण अपने अहंकार के सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। आपने उस जैसे शक्तिशाली को पराजित कर दुर्लभ विजय प्राप्त की है।'

भगवान् श्रीराम ने इस विजय को साधारण बताते हुए कहा, 'हे सखे विभीषण, रावण पर विजय पाना कोई बड़ी विजय नहीं है। वास्तव में असली विजेता वह है, जो इस संसार रूपी शत्रु को जीत सके। विजय तो उन्हीं की होती है, जो धर्ममय रथ पर सवार होकर दुर्गुणों और दुर्व्यसनों पर विजय प्राप्त करते हैं। संसार के क्लेशों पर विजय प्राप्त करने वाले ही सच्चे विजेता माने जाते हैं। रावण अपने दुर्गुणों के कारण पराजित हुआ। दुराचारी को देर-सवेर

नष्ट होना ही पड़ता है।'

भगवान् श्रीराम पूर्व में भी विभीषण से कहा करते थे, 'केवल काठ के रथ पर आरूढ़ होकर अस्त्र-शस्त्रों के बल पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। असली विजय के लिए धर्ममय रथ चाहिए। शौर्य और धीरज इस धर्ममय रथ के पहिये होते हैं। विजय के लिए सबसे बड़ी शक्ति सत्य की चाहिए। शूरवीरता सत्याचरण से ही प्राप्त होती है। सत्य, दया, संयम, विवेक ऐसे सद्गुण हैं, जिन्हें धारण करनेवाला सदैव अजेय रहा है। उसे कोई नहीं जीत सका है।'

भगवान् के मुख से धर्म और सत्याचरण का महत्त्व सुनकर विभीषण कृतकृत्य हो उठे।

●●●

117.

भगवद्भक्त के लक्षण

महर्षि मार्कंडेय ने एक बार भगवान् विष्णु से प्रश्न किया, 'भगवन्, भगवद्भक्तके लक्षण क्या हैं? वे कौन-कौन से कर्म हैं, जिन्हें अपनाने से कोई व्यक्ति भगवान् का प्रिय बन जाता है?'

भगवान् ने उत्तर में कहा, 'महर्षि, जो संपूर्ण जीवों के हितैषी हैं, जो दूसरों के दोष नहीं देखते, जो संयमी हैं, जो इंद्रियों को वश में रखने वाले और शांत स्वभाव के हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। इसी प्रकार, जो मन, वाणी तथा क्रिया द्वारा दूसरों को कभी पीड़ा नहीं पहुँचाते, जिनकी बुद्धि सात्त्विक है और जो हमेशा सद्कर्मों और सत्संग में लगे रहते हैं, वे उत्तम भक्त हैं।'

कुछ क्षण मौन रहने के बाद भगवान् ने विस्तार से बताया, 'जो व्यक्ति अपने माता-पिता में भगवान् विश्वनाथ के दर्शन करे, उन्हें गंगा की तरह पावन मानकर उनकी नित्य सेवा करे, जो दूसरों की उन्नति देखकर प्रसन्न हो, जो दूसरों की तृप्ति के लिए कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि खुदवाए, वह श्रेष्ठ भगवद्भक्त है।'

भगवान् ने महर्षि से आगे कहा, 'अतिथियों का सत्कार करनेवाला, जरूरतमंदों को जलदान और अन्नदान करनेवाला, शुद्ध हृदय से श्री हरिनाम का जप करनेवाला आदर्श गृहस्थ भी मेरा प्रिय भक्त है। इसलिए हे मार्कंडेय, जो व्यक्ति इस प्रकार की आदर्श जीवनचर्या का पालन करता है, वह सदा सपरिवार सुखी और संतुष्ट रहता है।'

महर्षि मार्कंडेय भगवान् के वचन सुनकर गद्गद हो उठे।

●●●

118.

विद्या सर्वश्रेष्ठ धन है

आचार्य भर्तृहरि उज्जयिनी में रहकर साधना किया करते थे। एक बार राजस्थानके एक राजा अपने पुरोहित और सेना के साथ तीर्थयात्रा के उद्देश्य से उज्जयिनी पहुँचे। उन्होंने आचार्य भर्तृहरि के दर्शन कर उनसे कल्याणकारी उपदेश देने की प्रार्थना की।

आचार्य ने कहा, 'राजा का प्रथम कर्तव्य है अपनी प्रजा के कल्याण में लगे रहना। प्रजा की सेवा-सहायता को भगवान् की पूजा-अर्चना मानने वाले राजा का यश हमेशा बना रहता है। किसी के साथ पक्षपात या अन्याय न होने पाए—इसका पूरा ध्यान राजा को रखना चाहिए। उसे यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी धन व शक्ति के अहंकार में प्रजा के गरीब व असहाय वर्ग के किसी व्यक्ति का उत्पीड़न न कर सके। जिस राज्य के लोग भगवद्भक्त और सदाचारी होते हैं, उसका यश हमेशा बना रहता है। राजा या शासक को संत-महात्माओं व विद्वानों को समय-समय पर आमंत्रित कर सत्संग का आयोजन करना चाहिए।'

एक विद्वान् ब्राह्मण द्वारा अपने को दरिद्र बताए जाने पर आचार्य भर्तृहरि ने कहा, 'तुम भ्रम में हो कि धनी नहीं हो। सबसे बड़ा धन तो विद्या होता है, जिसे न कोई चुरा सकता है और न ही कोई दुरुपयोग कर सकता है। विद्या ही यश और सच्चा सुख देने वाली देवी है। तुम विद्या दान करते रहो, बच्चों और किशोरों को संस्कारित करते रहो, दरिद्रता कभी नहीं सताएगी। विद्यावान व्यक्ति राजा से लेकर साधारण गृहस्थी तक से सम्मान पाता है। विद्या, तप, दान, ज्ञान और शील ही मनुष्य के सर्वोच्च आभूषण हैं।'

●●●

119.

सच्चा पुरुष कौन है?

मिथिला के राजपंडित गणपति के पुत्र विद्यापति अपने पिता की तरह धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता और परम धार्मिक थे। उन्होंने किशोर अवस्था में ही काव्य साधना शुरू कर दी थी। उनकी कविताएँ सुनकर मिथिला नरेश शिवसिंह मंत्रमुग्ध हो उठते थे।

राजा प्राय: विद्यापति को अपने महल में आमंत्रित कर उनसे धर्म, संस्कृति व साहित्य संबंधी वार्त्तालाप किया करते थे।

एक दिन राजा ने कहा, 'पंडितराज, आपने सर्व धर्मशास्त्रों व साहित्य का गहन अध्ययन किया है। शास्त्रों में सच्चे मानव के क्या लक्षण बताए गए हैं?'

महाकवि विद्यापति ने बताया, 'सद्गुणों से युक्त व्यक्ति ही सच्चा मानव कहलाने का अधिकारी है। जो विद्यावान, विवेकी, पुरुषार्थी, संयमी व सदाचारी हो, वही सच्चा पुरुष कहलाने का अधिकारी है। धर्मशास्त्रों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति मानव के लिए आवश्यक मानी गई है। विवेकी, बुद्धिमानी, संयमी और कर्तव्यनिष्ठ अर्थात् पुरुषार्थी व्यक्ति ही इन चारों कर्तव्यों की पूर्ति करने की क्षमता रखता है। मूढ़, आलसी, असंयमी और दुराचारी तो इनमें से एक की प्राप्ति भी नहीं कर सकता। अत: धर्मशास्त्रों में इन सब सद्गुणों से रहित पुरुष को पूँछ रहित पशु की संज्ञा दी गई है।'

महाकवि के शब्द सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विनयपूर्वक प्रार्थना की, 'पंडितराज, आप पुरुष के कर्तव्य निर्धारण करने वाले ग्रंथ की रचना करें।' महाकवि विद्यापति ने मैथिली और संस्कृत में अनेक पुस्तकों की रचना कर ख्याति अर्जित की।

●●●

120.

शब्दों का जादू

सांगानेर (राजस्थान) में पैदा हुए पठान रज्जब अली संत दादूजी से बहुतप्रभावित थे। वे समय-समय पर संतश्री के पास जाकर उनका उपदेश सुना करते थे। दादूजी ने देखा कि कुछ समय में ही रज्जब ने नशा और मांसाहार त्यागकर सात्त्विक वृत्ति अपना ली है। उनकी भक्ति व प्रतिभा ने दादू को काफी प्रभावित किया। दादू को लगने लगा कि यह युवक उच्च कोटि का भक्त-साधक बनेगा।

परिवार वालों ने रज्जब का विवाह तय कर दिया। रज्जब की बारात सांगानेर से आमेर जा रही थी। आमेर से कुछ मील पहले ही दादू की कुटिया थी। रज्जब उनसे आशीर्वाद लेने वहाँ पहुँचे। संत दादू ईश्वर के ध्यान में मग्न थे। ध्यान से जैसे ही उठे कि उन्होंने अपने प्रिय शिष्य को दूल्हे के वेश में देखते ही कहा—

रज्जब तैणे गज्जब किया, सिर पर बांधा मौर।
आया था हरि भजन को, करै नरक का ठौर॥

यानी तू तो भगवान् का भजन करने व अपने सद्विचारों से संसार का कल्याण करने आया था। अब संसार के प्रपंचों में फँसकर जीवन को नरक बना लेगा।

गुरु के शब्दों ने चमत्कार किया। रज्जब की विरक्ति भावना जाग उठी। उन्होंने अपने सिर का मौर उतारकर छोटे भाई को सौंपते हुए पिता से कहा, 'उस लड़की का विवाह इससे कर दें। मैं अविवाहित रहते हुए हरि भजन व संत सेवा करूँगा।' उसी क्षण से रज्जब गुरु दादूजी की सेवा व साधना में लग गए। दादू के भक्तिमय पदों के संकलन का ऐतिहासिक काम उन्होंने किया। संत रज्जब ने स्वयं भी असंख्य भक्ति पदों की रचना की।

●●●

121.

विवेक दृष्टि का महत्त्व

ईसा मसीह किसी को भी दु:खी देखते, तो उसका दु:ख दूर करने के लिए तत्पर हो उठते थे। वे सदैव दुर्व्यसनों का त्याग कर सदाचार का जीवन जीने का उपदेश लोगों को दिया करते थे।

एक दिन वे नगर की सड़क से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति नशे में धुत्त होकर किसी युवती का

आलिंगन करने का प्रयास कर रहा है। सार्वजनिक रास्ते पर ऐसा अश्लील प्रदर्शन देखकर वे ठिठक गए। वह व्यक्ति भी ईसा को देखकर घबराकर सामने खड़ा हो गया।

ईसा ने उसके चेहरे पर दृष्टि डाली, तो उसे पहचान लिया। वे बोले, 'अरे, तू तो वही है, जिसने कुछ वर्ष पूर्व अपने अंधेपन से छुटकारा पाने के लिए मुझसे प्रार्थना की थी। मैंने तुझ पर दया की और परमात्मा से याचना कर तुझे नेत्र ज्योति दिलवाई थी।'

ईसा के शब्द सुनकर वह कुछ देर मौन खड़ा रहा, फिर बोला, 'आपने ठीक पहचाना, मैं वही हूँ।'

ईसा बोले, 'मूर्ख, क्या ईश्वर की कृपा से मिली आँखों की ज्योति का ऐसे घिनौने काम में उपयोग करना तुझे शर्मनाक नहीं लगता? इससे तो अच्छा है कि तू अंधा ही रहता।'

ईसा के शब्द सुनते ही उसकी आँखें खुल गईं। वह रो पड़ा। उसने ईसा के चरणों में गिरकर कहा, 'आपने यदि नेत्र ज्योति के साथ-साथ मुझे विवेक दृष्टि भी दिलाई होती, तो मैं ऐसे कुमार्ग पर क्यों चलता? अब मैं सदा सद्मार्ग पर ही चलूँगा।'

ईसा अपने भक्तों को उपदेश देते समय विवेक व सदाचार पर और ज्यादा जोर देने लगे।

●●●

122.

पूछे जात न पात

दलित जाति में पैदा हुए रविदास परम भगवद्भक्त थे। काशी के विख्यात संतस्वामी रामानंद ने उन्हें दीक्षा देते समय आशीर्वाद दिया था, 'भक्ति के क्षेत्र में तो तुम शिखर पर पहुँचोगे ही, तुम्हारे लिखे पदों से असंख्य लोग प्रेरणा लेकर अपना जीवन सार्थक करेंगे।' आगे चलकर रविदासजी ने असंख्य भक्ति पदों की रचना की।

संत रविदास अपने प्रवचन और पदों के माध्यम से सदाचार और नैतिकता की प्रेरणा दिया करते थे। वे कहा करते थे कि भगवान् की कृपा उसी को प्राप्त होती है, जिसका हृदय लोभ, लालच व अन्य दुर्व्यसनों से मुक्त होकर पवित्र बन जाता है।

एक बार काशी में कुछ संत उनके सत्संग के लिए पहुँचे। किसी ने यह पूछ लिया, 'संत की पहचान किस गुण से होती है। क्या संत ऊँची जाति का ही होता है?'

संत रविदास ने उन्हें बताया, *'संतन के मन होत है, सबके हित की बात। घट-घट देखे अलख को, पूछे जात न पात॥'*

यानी सच्चा संत वही है, जो सबके कल्याण और हित की बात सोचता है, जो जात-पात के भेद भाव से दूर रहकर प्राणी मात्र में, सब जगह भगवान् के दर्शन करता है। संत रविदास ने एक जगह लिखा है—

'रविदास जन्म के कारनै, होत न कोऊ नीच।
नर को नीच करि डारि है, ओछे करम की कीच॥'

यानी जन्म के कारण कोई ऊँच-नीच नहीं होता। बुरा कर्म ही व्यक्ति को नीच बनाता है। रविदासजी परम विरक्त संत थे। संतोष और भक्ति को वे सच्चा धन मानते थे।

●●●

123.

अनूठी मातृभक्ति प्रेम

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन अत्यंत धर्मपरायण तथा ईश्वरभक्त थे।एक बार किसी पादरी ने उनकी सात्विकता, दयालुता और ईश्वरनिष्ठा देखकर कहा था, 'हमारे राष्ट्रपति तो संत हैं।'

राष्ट्रपति जैसे सर्वोच्च पद पर आसीन होते हुए भी लिंकन असहायों व रोगियों की अपने हाथों से सेवा करने के लिए तत्पर हो जाते थे। एक बार वे राष्ट्रपति भवन में मिलने आए कुछ लोगों की समस्याओं की जानकारी ले रहे थे। एक महिला जैसे ही उनके समक्ष पहुँची कि उसे देखते ही लिंकन की आँखों से अश्रु निकल गए। उसने यह देखा, तो बोली, 'मिस्टर प्रेसिडेंट, आप अमेरिका के सबसे बड़े और सुखी व्यक्ति हैं। आपके चेहरे पर अचानक आई उदासी व आँखों से निकले आँसुओं का कारण क्या है?'

राष्ट्रपति लिंकन ने सहज होते हुए कहा, 'मैं किशोर था, तभी माँ के साये से वंचित हो गया था। मेरी माँ धर्मपरायण महिला थीं। वे मुझे गोद में बिठाकर कहा करती थीं कि हमेशा दुर्गुणों और दुर्व्यसनों से दूर रहना। दूसरों की सेवा-सहायता करना कभी न भूलना। ईश्वर उसी पर कृपा करते हैं, जो दयालु और अच्छा इनसान होता है। मेरी माँ ने मुझे अच्छे संस्कार दिए। मैं जो कुछ हूँ, उन्हीं की कृपा से हूँ। अब मैं जब भी किसी महिला को देखता हूँ, मुझे अपनी माँ याद आ जाती हैं। यदि आज मेरे साथ माँ होतीं, तो मैं सबसे सुखी व्यक्ति होता।' कहते-कहते लिंकन फिर रो पड़े।

●●●

124.

ज्ञान ही शाश्वत है

एक बार प्रजापति दक्ष, भारद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषि भगवान् ब्रह्माजीके पास सत्संग के लिए पहुँचे। उन्होंने ब्रह्माजी से प्रश्न किया, 'भगवन्, लोक-परलोक के कल्याण का सरल साधन बताने की कृपा करें।'

ब्रह्माजी ने कहा, 'महर्षियो, समस्त संग्रह का अंत है विनाश, उत्थान का अंत है पतन, संयोग का अंत है वियोग और जीवन का अंत है मृत्यु। केवल ज्ञान ही ऐसा तत्त्व है, जिसका विनाश नहीं होता। इसलिए सांसारिक वस्तुओं का मोह त्यागकर ज्ञान की उपासना करना ही मानव का कर्तव्य है। जो व्यक्ति पंच भौतिक देह का अभिमान त्याग देता है, ज्ञान और भक्ति में चित्त लगाता है, उसके लोक-परलोक, दोनों कल्याणकारी बन जाते हैं।' उन्होंने बताया, 'जो संपूर्ण प्राणियों में समान भाव रखता है, लोभ और कामना से रहित है, जिसकी सर्वत्र समान दृष्टि रहती है, वह ज्ञानी पुरुष ही परम गति को प्राप्त होता है। गृहस्थ को सद्पुरुषों के आचरण का तथा सत्य, अहिंसा, संतोष

आदि नियमों का पालन करना चाहिए।'

संन्यासी के कर्तव्य बताते हुए ब्रह्माजी ने कहा, 'साधु-संन्यासी को तनिक भी संग्रह नहीं करना चाहिए। उसे जिह्वा के स्वाद का परित्याग कर भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए। अहंकार से दूर रहकर उसे इंद्रियों पर पूर्ण संयम रखना चाहिए। समस्त प्रकार की आसक्तियों से दूर रहकर उसे भगवान् की भक्ति और प्राणियों के सुख के लिए तत्पर रहना चाहिए।'

ऋषियों की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

●●●

125.

अहंकार का दुष्परिणाम

दैत्यराज विकटासुर ब्रह्माजी का परम भक्त था। उसने ब्रह्माजी को प्रसन्न करनेके लिए घोर तपस्या की। प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उससे कहा, 'धर्म का अनुकरण ही कल्याणकारी होता है। तुम दैत्यकुल में जन्मे हो, अत: तुम्हें दैत्यों के धर्म व मर्यादा विरोधी दुष्कृत्यों को त्यागकर देवताओं की तरह धर्ममय जीवन जीना चाहिए। इसी से कल्याण होगा।' इसके बाद उन्होंने उसे कोई वर माँगने को कहा।

विकटासुर के हृदय में अनेक इच्छाएँ पैदा हो उठीं। उसने कहा, 'हे देव, मैं लंबे समय तक सुखी जीवन भोगना चाहता हूँ। अत: ऐसा वरदान दें कि मेरी मृत्यु कभी न हो।'

ब्रह्माजी ने कहा, 'जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु निश्चित है, लेकिन मैं यह वरदान देता हूँ कि तुम स्त्री को छोड़कर अन्य किसी के हाथों न मारे जा सको।'

वरदान पाकर विकटासुर अहंकार में अंधा हो उठा। उसने दैत्यों के साथ मिलकर देवताओं व सद्पुरुषों पर अत्याचार शुरू कर दिए। जब उसके अत्याचार चरम सीमा पर पहुँच गए, तो देवताओं ने भगवती नारायणी की आराधना कर उनसे मुक्ति दिलाने की गुहार लगाई।

भगवती नारायणी ने कहा, 'विकटासुर के पापों का घड़ा भर चुका है। जाओ, निश्चिंत होकर धर्मकार्य में लगे रहो।'

विकटासुर ने जैसे ही भगवती नारायणी को अपनी ओर आते देखा, उसे वरदान की बात याद हो आई। वह भागकर सागर तल में छिप गया। देवी नारायणी ने वहाँ से खींचकर उसका वध कर डाला।

●●●

126.

अनूठी विरक्ति

दक्षिण भारत के एक राज्य के अधिपति पीपा परम सदाचारी और धर्मात्मा थे।प्रजा की सेवा में तत्पर रहने के साथ-साथ वे नियमित रूप से भगवान् का ध्यान तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया करते थे।

एक बार किसी विख्यात संत की सलाह पर वे प्रधानमंत्री तथा अन्य लोगों को साथ लेकर स्वामी रामानंद के दर्शन के लिए काशी पहुँचे। उन्होंने प्रधानमंत्री को स्वामीजी के पास भेजा। उसने कहा, 'हमारे राजा आपके दर्शन करना चाहते हैं। आश्रम में आने की स्वीकृति दें।' स्वामीजी ने कहा, 'राजा-महाराजाओं से मुझे क्या लेना देना। मैं निर्धन व यायावर साधु-संन्यासियों से बातें कर संतोष का अनुभव करता हूँ।'

पीपा तुरंत राजधानी लौट आए। उन्होंने अपनी तमाम व्यक्तिगत संपत्ति निर्धनों में वितरित कर दी। एक निर्धन के रूप में वे पुन: काशी पहुँचे। स्वामी रामानंद को जब राजा के इस त्याग का पता लगा, तो उन्होंने उन्हें उपदेश देते हुए कहा, 'राजन्, अपने को राजा की जगह भगवान् का प्रतिनिधि मानकर जनता की सेवा करो। यही राजा का सर्वोत्तम धर्म है। राज्य में कोई भूखा-प्यासा न रहने पाए, किसी के साथ अन्याय न हो—इसका ध्यान रखते हुए भगवान् की उपासना करो। ऐसा करने पर तुम्हारी गणना आगे चलकर सद्गृहस्थ राज-संत के रूप में होगी।'

कुछ वर्ष बाद स्वामी रामानंद उनके राज्य में पहुँचे। पीपा तथा उनकी रानी को उन्होंने दीक्षा दी। पीपा की गणना आगे चलकर परम विरक्त राज-संत के रूप में हुई।

●●●

127.

भगवान् प्रेम के भूखे हैं

कश्यपवंशी महामुनि देवल के पुत्र शांडिल्य त्याग, वैराग्य और तपस्या की मूर्तिथे। वे हर क्षण भगवान् के ध्यान तथा धर्मशास्त्रों के अध्ययन में लगे रहते थे। उन्होंने गहन अध्ययन व अनुभूतियों के बाद ब्रह्मसूत्र का प्रणयन किया। यह विलक्षण ग्रंथ 'शांडिल्य भक्तिसूत्र' के नाम से प्रसिद्ध है।

एक बार मथुराधिपति राजा वज्रबाहु महर्षि शांडिल्य के सत्संग के लिए पहुँचे। उन्होंने महर्षि से प्रश्न किया, 'भगवान् मनुष्य के किन गुणों पर रीझते हैं?'

महर्षि ने बताया, 'जो व्यक्ति भगवान् की कृपा प्राप्त करना चाहता है, उसे अभिमान और बड़प्पन की भावना त्यागकर परम दयालु और विनम्र बन जाना चाहिए। दूसरे के दु:ख से दु:खित होने वाले, दूसरे के सुख से सुखी होने वाले, असहाय की सहायता के लिए तत्पर रहने वाले पर ही भगवान् अपनी कृपा करते हैं।'

एक बार ब्रज यात्रा के दौरान महर्षि शांडिल्य की महाराज परीक्षित से भेंट हो गई। परीक्षित ने उनसे प्रश्न किया, 'भगवान् के साक्षात्कार के लिए क्या उपाय किए जाएँ?'

महर्षि ने उत्तर दिया, 'शास्त्रों में कहा गया है कि भगवान् प्रेम के भूखे हैं। मोह-माया और राग-द्वेष त्यागकर जो भक्त हृदय को प्रेम रस में सराबोर कर लेता है, वह भगवान् का साक्षात्कार कर सकता है। अत: तमाम दुर्गुणों को त्यागकर निष्काम प्रेम में डूबे रसिकजन को ही भागवत में भक्त कहा गया है।'

प्रेम का महत्त्व सुनकर राजा परीक्षित भाव-विभोर होकर महर्षि शांडिल्य के चरणों में झुक गए।

●●●

128.

करुणा भावना

त्रिजटा विभीषण की बेटी थी। रावण अपनी भतीजी त्रिजटा से बहुत प्रेम करताथा। जब उसने देवी सीता का अपहरण कर उन्हें अशोक वाटिका में रखा, तो उन पर निगाह रखने के लिए उसने वहाँ त्रिजटा के नेतृत्व में कुछ राक्षसियों की तैनाती की। त्रिजटा राक्षसकुल में पैदा होने के बावजूद अपने पिता विभीषण के संस्कारों में पली थी। श्रीराम के गुणों का बखान सुनकर वह समझ गई थी कि उसके ताऊ ने भयंकर अधर्म किया है। रावण ने राक्षसियों को सीताजी को आतंकित करने के उद्देश्य से नियुक्त किया था, किंतु त्रिजटा एकांत में सीताजी के प्रति पूरी सहानुभूति व श्रद्धा व्यक्त कर उन्हें सांत्वना देती।

एक दिन पति के विरह से दु:खी सीताजी ने धैर्य त्यागते हुए त्रिजटा से कहा, 'मेरे लिए अग्नि का प्रबंध कर दो, ताकि मैं आत्मत्याग कर दु:खों से मुक्त हो सकूँ।'

यह सुनते ही त्रिजटा ने कहा, 'माता, श्रीराम साधारण मानव नहीं हैं। वे शीघ्र ही आपको दु:खों से मुक्त करेंगे। संकट में धैर्य कदापि नहीं खोना चाहिए।'

त्रिजटा ने एक दिन रावण की दूती राक्षसियों से कहा, 'मुझे सपने में दिखाई दिया है कि जिसने भी सीताजी को कष्ट दिया, रामदूत उसे आग में झोंक रहे हैं।'

इस युक्ति से उसने राक्षसियों को भयाक्रांत कर उन्हें शांत रहने पर विवश कर दिया।

सीताजी ने त्रिजटा की सहानुभूति के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। श्रीराम व हनुमान ने भी त्रिजटा को भक्तहृदया बताकर प्रशंसा की।

●●●

129.

दान का रहस्य

एक बार देवर्षि नारद सौराष्ट्र पहुँचे। वहाँ के राजा धर्म वर्मा परम प्रतापी थे।

वे प्रजा के पालन के साथ-साथ तपस्या और शास्त्रों के अध्ययन में लगे रहते थे। एक बार दान के महत्त्व संबंधी किसी श्लोक का अर्थ उनकी समझ में नहीं आ रहा था। जब देवर्षि नारद उनसे मिलने पहुँचे, तो राजा ने उन्हें प्रणाम कर पूछा, 'देवर्षि, शास्त्रों में दान के दो हेतु और छह अधिष्ठान बताए गए हैं। वे दो हेतु कौन से हैं?'

नारदजी ने बताया, 'राजन्, श्रद्धा और शक्ति दान के दो हेतु हैं। श्रद्धा से दिया गया दान ही फलदायी होता है।

यदि कोई लालच या दबाव में दान देता है, तो उसका पुण्य नहीं मिलता। इसी तरह शक्ति का अर्थ है—अपनी सामर्थ्य के अनुसार अर्थात् कुटुंब के भरण-पोषण से जो अधिक हो, उसे ही दान में देना चाहिए। अपनी जरूरतों की पूर्ति न होने पाए, फिर भी दान देना—इसे वर्जित बताया गया है।'

नारदजी ने आगे कहा, 'जो धन किसी को सताकर न लाया गया हो, वही धन दान देने योग्य है। किसी प्रयोजन की इच्छा न रखकर केवल धर्मबुद्धि से सुपात्र व्यक्तियों को दान देना ही धर्मदान है। जिसे दान दिया जाए, उसका बिना किसी हीन भावना से सत्कार करना चाहिए। मन में यह धारणा रखनी चाहिए कि वह दान स्वीकार कर हम पर कृपा कर रहा है। कुआँ, तालाब, औषधालय, धर्मशाला बनाने आदि सर्वोपयोगी कार्यों में धन लगाना ख्याति बढ़ाने वाला दान है।'

देवर्षि नारद के मुख से दान का महत्त्व सुनकर राजा की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

●●●

130.

सर्वोपरि आभूषण

आदि शंकराचार्य देश भर का भ्रमण कर लोगों को ज्ञानोपयोगी उपदेश दियाकरते थे। एक बार उन्होंने कहा, 'जीवन में चार कल्याणकारी बातों का होना बड़ा दुर्लभ है। पहला प्रियवचन सहित दान, दूसरा अहंकाररहित ज्ञान, तीसरा क्षमायुक्त वीरता और चौथा त्यागपूर्वक निष्काम दान। धन, यौवन और आयु विद्युत की भाँति अत्यंत चंचल होते हैं। ये नाशवान हैं, अत: इस जन्म में प्राप्त धन, यौवन और आयु का सदा सदुपयोग करना चाहिए। प्राणों पर बन आने पर भी पापाचरण से दूर रहना चाहिए। ईश्वर को प्रिय सद्कर्मों में प्रवृत्त रहकर ही मानव जीवन सफल बनाया जा सकता है।'

जीवन में व्यक्ति का सर्वोत्तम आभूषण क्या है—इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य श्री ने कहा, 'शील अर्थात् उत्तम चरित्र ही सर्वोपरि आभूषण है। जो सदाचारी और विनयी है और सत्य वचन बोलता है, उसमें सभी प्राणियों को अपने वश में करने की क्षमता होती है। दरअसल वह व्यक्ति अंधा नहीं होता, जो आँखों से रहित है, बल्कि अंधा वह है, जो आँखें रहते हुए भी निंदित और धर्मविरुद्ध कार्य करता है। इसी तरह बधिर वह है, जो हितकारी बात नहीं सुनता और गूँगा वह है, जो प्रिय वचन नहीं बोलता।'

उन्होंने आगे कहा, 'यदि तुझे मोक्ष की इच्छा है, तो विषयों को विष के समान दूर से ही त्याग दे और संतोष, दया, क्षमा, सरलता जैसे सद्गुणों का पालन करते हुए भगवतभक्ति में लीन रहकर मानव जीवन को सार्थक बना।'

●●●

131.

हृदय में शांति रहे

अपनी पटरानी जांबवंती के पुत्रवती होने की अभिलाषा पूरी करने के लिएभगवान् श्रीकृष्ण ने एक बार हिमालय क्षेत्र के एक आश्रम में भगवान् शिव की आराधना की। वे प्रतिदिन विधि-विधान से पूजा और तप करने लगे। लंबे समय तक उपासना करने से भगवान् महादेव ने प्रकट होकर श्रीकृष्ण को दर्शन दिए। महादेव के अनूठे तेज से श्रीकृष्ण की आँखें बंद हो गईं। वे हाथ जोड़े खड़े रहे।

महादेव ने कहा, 'हे श्रीकृष्ण, आपने असंख्य बार मेरी आराधना की है। मैं स्वयं आपके बाल रूप के दर्शन के लिए ब्रज गया था। मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

श्रीकृष्ण ने आदर सहित भगवान् महादेव की स्तुति की।

महादेव ने कहा, 'मैं आपकी भक्ति से परम संतुष्ट हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप मुझसे कोई वर माँगें।'

श्रीकृष्ण ने नतमस्तक होकर कहा, 'मैं आपके दर्शन से ही कृतकृत्य हो गया। आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझे वरदान दें कि मेरी धर्म में दृढ़ बुद्धि बनी रहे। अपयश का कोई कार्य मुझसे न होने पाए। योग-साधना की ओर प्रवृत्ति बनी रहे। समय-समय पर आपका सान्निध्य प्राप्त होता रहे। जांबवंती को पुत्र प्राप्ति हो।'

महादेव ने तमाम इच्छाओं की पूर्ति का वर दे दिया। पार्वतीजी ने कहा, 'कृष्ण, मुझसे भी तो कुछ माँगिए।'

श्रीकृष्ण ने हाथ जोड़कर कहा, 'हृदय में सदा शांति रहे और सब माताओं के प्रति मेरा समान स्नेह रहे—ऐसा वर दीजिए।' देवी पार्वती से आशीर्वाद लेकर श्रीकृष्ण वापस लौट गए।

●●●

132.

कुसंग का दुष्परिणाम

प्राचीन काल में एक असुर परिवार में जन्मा बलासुर कुसंग में पड़कर दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त रहने लगा। वह दिन में भी मद्यपान करता, जुआ खेलता और चोरी करता था। संस्कारी असुर उसे इन दुष्कर्मों से बचने के सुझाव देते, तो वह उन पर दोषारोपण करने लगता। अपने दुराचरण के कारण वह असुरों में भी अप्रिय हो गया।

एक बार असुरों के पुरोहित ने उसे समझाया, 'नशा, जुआ और चोरी ऐसे दुष्कर्म हैं, जो सर्वनाश कर डालते हैं। निंदा व द्वेष से अपने संबंधी भी शत्रु बन जाते हैं। तुम कुसंग त्यागकर संस्कारी लोगों का संग करो।'

बलासुर ने क्रोधित होकर पुरोहित को अपमानित कर भगा दिया। वह हर क्षण सद्पुरुषों को कष्ट पहुँचाने की नई-नई विधि खोजता रहता था।

एक दिन उसे लगा कि यज्ञादि सत्कर्मों में गाय के दूध, घी, दही आदि काम आते हैं। देवता गायों का पूजन करते हैं। यदि उनकी गायें चुरा ली जाएँ, तो वे शक्तिहीन हो जाएँगे। उसने अपने साथी दैत्यों के साथ मिलकर देवलोक की सभी गायें चुरा लीं और उन्हें एक गुफा में छिपा दिया। जब इंद्र को बलासुर के इस कुकृत्य का पता चला, तो उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजी से आशीर्वाद प्राप्त कर देवसेना को भेजा और गायों को मुक्त करा लिया।

बृहस्पति ने इंद्र को परामर्श दिया कि देवता ही नहीं, असुर भी बलासुर के अत्याचारों से त्रस्त हो चुके हैं। अत:

उसके पापों का फल मिलना चाहिए। इंद्र ने अपने वज्र से बलासुर का अंत कर डाला।

●●●

133.

रोग का निवारण

काशी के राजा ब्रह्मदत्त का बड़ा पुत्र विरक्त स्वभाव का था। पिता की मृत्यु के बाद उसने अपने छोटे भाई को राजा नियुक्त किया और स्वयं वन में चला गया। कुछ वर्ष बाद उसके मन में राज करने की इच्छा जागृत हुई। छोटे भाई को पता चला, तो उसने आदर सहित राज्य की बागडोर उसे सौंप दी। राजा बनते ही उसके मन में राज्य-विस्तार की लालसा जगने लगी। उसने कई राज्यों पर चढ़ाई कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया।

इंद्र ने जब देखा कि एक धर्मपरायण व्यक्ति माया के जाल में फँस गया है, तो उन्होंने उसे सही रास्ते पर लाने का निर्णय किया। एक दिन ब्रह्मचारी के वेश में आकर उन्होंने राजा से कहा, 'मैं ऐसे तीन नगरों की यात्रा कर आया हूँ, जहाँ अपार स्वर्ण व रत्नों के भंडार हैं। यदि वे नगर आपके हाथों में आ जाएँ, तो आप अथाह संपत्ति के स्वामी बन जाएँगे।' यह बताकर वह वापस लौट गए।

राजा ने सोचा कि ब्रह्मचारी ने नगरों के नाम तो बताए ही नहीं। उसने ब्रह्मचारी की खोज कराई, लेकिन उसका कोई पता न चला। राजा की नींद उड़ गई। अपार संपदा की तृष्णा ने उसे रोगी बना दिया। एक दिन बोधिसत्व भिक्षा के लिए राजमहल पहुँचे। राजा से मिलकर वे समझ गए कि रत्नों की लालसा ने उसे रोगी बना दिया है। उन्होंने उपदेश देते हुए कहा, 'आपको शारीरिक नहीं, मानसिक रोग है। धन की लालसा ने आपके शरीर को व्याधियों का घर बना दिया है।' ब्रह्मदत्त ने उसी क्षण राजपाट त्याग दिया। उन्होंने अपना जीवन साधना में लगा दिया, फिर वे पूर्ण स्वस्थ हो गए।

●●●

134.

तप का अर्थ है त्याग

गर्ग संहिता के रचयिता महर्षि गार्गेय धर्मशास्त्रों के प्रकांड ज्ञाता थे। वे घोरतपस्वी और परम विरक्त थे। ऋषि-महर्षि और श्रद्धालुजन समय-समय पर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करने उनके पास आया करते थे।

एक बार शौनकादि ऋषि उनके सत्संग के लिए पहुँचे। उन्होंने प्रश्न किया, 'धर्म का सार क्या है?'

महर्षि ने बताया, 'सत्य, अहिंसा और सदाचार का पालन करते हुए कर्तव्य करने वाला ही धर्मात्मा है। धर्म ही तो मनुष्य को सच्चा मानव बनने की प्रेरणा देता है। प्राणिमात्र के कल्याण की कामना ही धर्म है।'

शौनकादि ऋषि ने दूसरा प्रश्न किया, 'महर्षि, तपस्या का अर्थ क्या है?'

महर्षि ने उत्तर दिया, 'तप का असली अर्थ है त्याग। मनुष्य यदि अपनी सांसारिक आकांक्षाओं और अपने दुर्गुणों का त्याग कर दे, तो वह सच्चा तपस्वी है। सदाचार और सद्गुणों से मन निर्मल बन जाता है। जिसका मन और हृदय पवित्र हो जाता है, वह स्वत: भक्ति के मार्ग पर चल पड़ता है। उस पर भगवान् कृपा करने को आतुर हो उठते हैं।'

ऋषि ने तीसरा प्रश्न किया, 'असली भक्ति क्या है?'

महर्षि का जवाब था, 'केवल भगवान् की कृपा की प्राप्ति के उद्देश्य से की गई उपासना को निष्काम भक्ति कहा गया है। सच्चा भक्त भगवान् से धन-संपत्ति, सुख-सुविधाएँ न माँगकर केवल उनकी प्रीति की याचना करता है। वह प्रभु से सद्बुद्धि माँगता है, ताकि वह धर्म के मार्ग से विपत्तियों में भी नहीं भटके।'

महर्षि गार्गेय के वचनों को सुनकर शौनकादि मुनि कृतकृत्य हो उठे।

●●●

135.

छात्रों का कर्तव्यपालन

प्रयाग के भारद्वाज आश्रम में छात्रों को संस्कृत, व्याकरण आदि की शिक्षा केसाथ-साथ आचार्य धनुर्विद्या की भी शिक्षा दे रहे थे। शिक्षा पूर्ण होने के बाद छात्रों को वन विहार के लिए लिए ले जाया गया। यमुना तट पर छात्रों ने डेरा जमाया। भोजन बनाने में निपुण छात्र अपने काम में जुट गए। आभेय, गार्ग्य, उद्गीथ, सत्ययज्ञ, उषस्ति आदि वृक्षों के नीचे बैठे संगीत में मग्न थे कि अचानक बचाओ-बचाओ के स्वर ने उनका ध्यान भंग किया। उन्होंने देखा कि वायुवेग से एक अश्वारोही आ रहा है और उससे बचने के लिए एक युवती शोर मचाते-मचाते यमुना में छलांग लगा रही है।

राजकुमार कुवलय और अतिधन्वा ने बाणों की वर्षा कर अश्वारोही को धराशायी कर डाला। उषस्ति ने यमुना में छलाँग लगाई और कन्या को जल से बाहर निकाला। आचार्य तथा छात्रों ने कन्या की मूर्च्छा दूर करने के लिए जड़ी-बूटी का रस उसके मुँह में डाला। कन्या ने आँखें खोलीं।

आचार्य ने कहा, 'पुत्री, भयभीत न हो। अपनी व्यथा हमें सुनाओ।'

कन्या ने बताया, 'गुरुदेव, मैं राजपुरोहित की पुत्री हूँ। मैं जब त्रिपुरारी मंदिर के दर्शन के लिए यमुना तट पर पहुँची, तो राजकुमार प्रलंब ने मुझे दबोचने की चेष्टा की। मैं अपनी इज्जत बचाने के लिए यमुना में कूद पड़ी।'

आचार्य ने कहा, 'पुत्री, उस कामी को हमारे शिष्यों ने फल चखा दिया है।'

आचार्य ने छात्रों की पीठ थपथपाते हुए कहा, 'किसी भी आपदाग्रस्त की सहायता के लिए तत्पर रहना सुशिक्षित व्यक्ति का धर्म और कर्तव्य—दोनों हैं।'

●●●

136.

सच्चा उत्तराधिकार

महात्मा शिबि बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। धर्मशास्त्रों के ज्ञाता तथा परमतपस्वी होने के कारण ऋषि-महर्षि भी उनका सम्मान करते थे। शिबि ने अपने पुत्र सत्यकाम को धर्मशास्त्रों और विभिन्न नीतियों का ज्ञान कराने के लिए महर्षि पिप्पलाद के पास भेजा। गुरु के सान्निध्य में रहकर सत्यकाम उच्च कोटि का विद्वान् बन गया।

सत्यकाम की प्रतिभा से संतुष्ट होकर शिबि ने महर्षि पिप्पलाद से अनुरोध किया कि वह पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने का संस्कार संपन्न करा दें। सत्यकाम चिंतित हो उठे कि उत्तराधिकार सौंपने के बाद पिताश्री घर से निकल गए, तो वे निराश्रित हो जाएँगे। शुभ मुहूर्त पर महर्षि पिप्पलाद ने उत्तराधिकार संस्कार संपन्न कराया। यज्ञादि के बाद शिबि ने संकल्प दोहराया, 'पुत्र, मैं अपनी वाणी के समस्त सद्गुण, नेत्रों में विद्यमान विमल दृष्टि, अपनी कर्म प्रवृत्ति, अपनी बुद्धि, ज्ञान सब तुम्हें सौंपता हूँ।'

पुत्र ने कहा, 'मैं सादर स्वीकार करता हूँ।'

पिता ने घर की परिक्रमा की और पुत्र के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

सत्यकाम ने गुरुदेव से प्रार्थना की, 'ऐसी व्यवस्था करें कि पिताश्री घर त्यागकर न जाएँ।'

पुत्र का आग्रह देख शिबि ने कहा, 'शास्त्र में दोनों प्रकार के विधान हैं। मैं घर में भी रह सकता हूँ। मेरी आध्यात्मिक ऊर्जा, भौतिक संपत्ति अब तुम्हारी है। दायित्व का हस्तांतरण करने के बाद अब मैं तुम्हारा आश्रित हो गया हूँ।' सत्यकाम सपरिवार दायित्व निर्वाह में जुट गया। पिता घर में रहकर ही साधना-अध्ययन में लीन रहने लगे।

●●●

137.

मौन का महत्त्व

वैदिक ज्ञान के विस्तार के बाद महर्षि वेदव्यास ने एक लाख श्लोकों वालेमहाभारत को लिपिबद्ध करने का संकल्प लिया। वेदव्यासजी धाराप्रवाह श्लोकों का उच्चारण करते थे और गणेशजी एकाग्र होकर उसे लिपिबद्ध करते थे।

कार्य पूरा होने के बाद महर्षि वेदव्यास ने कहा, 'महामहिम गणनायक! महाभारत आपकी लेखनी से प्रस्तुत ग्रंथ है। मैंने तो केवल शब्दों की सृष्टि की है। मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ।'

गणपति ने कहा, 'महर्षि, ऐसा नहीं है। आप तो ज्ञान की साक्षात् मूर्ति हैं। शब्द ब्रह्म के साक्षात् कोश हैं। मुझे व्यर्थ ही इस कार्य का श्रेय दे रहे हैं।'

महर्षि वेदव्यास जानते थे कि लेखन के दौरान गणेशजी पूरी तरह मौन थे। उन्होंने प्रश्न किया, 'गणनायक, मैं आपके वाक्-संयम व मौन के अनूठे पालन को देखकर हतप्रभ था। कृपया मौन के महत्त्व से अवगत कराने की कृपा करें।'

गणेशजी ने बताया, 'इंद्रियों का दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिए। ऊर्जा तथा दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिए इंद्रिय संयम बहुत महत्त्व रखता है।' कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा, 'महर्षि, वाक्-संयम को साध लेने से अन्य इंद्रियों का संयम स्वत: हो जाता है। अधिक बोलने से कई बार अनर्गल-अवांछित शब्द मुख से निकलते हैं। इससे राग, द्वेष, ईर्ष्या जैसे दुर्गुण पनपते हैं। इसलिए अच्छा यही है कि एक-एक शब्द सोच-समझकर बोला जाए।'

महर्षि वेदव्यास गणपति के श्रीमुख से मौन का महत्त्व सुनकर आनंद से पुलकित हो उठे।

●●●

138.

पतित तो तुम स्वयं हो

महर्षि परुच्छेप सरस्वती के वरद पुत्र थे। वे अपने शिष्यों को धर्मानुसार जीवन बिताने की प्रेरणा दिया करते थे। सुपर्ण भी महर्षि के मेधावी शिष्यों में था। उसने अपने त्यागमय जीवन में काम, क्रोध, मोह, अहंकार को फटकने न दिया था।

एक दिन उसने देखा कि गुरुदेव ने एक याचक पर दया करके उसके लोहे के भिक्षापात्र को किसी पाषाण खंड का स्पर्श कराकर उसे स्वर्ण का बना डाला। सोने के चमचमाते भिक्षापात्र ने उसके मन में हलचल मचा दी। उसने कहा, 'गुरुदेव, यदि आप मेरे लिए लौहखंडों को स्वर्ण बनाने की कृपा करें, तो मैं कुछ समय तक ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का आनंद ले सकता हूँ।'

महर्षि ने शिष्य का आग्रह देखा, तो उसे संसार की वास्तविकता दिखाने देशाटन पर निकल गए।

सुपर्ण ने देखा कि लोग धन-संपत्ति के लिए पागल बने हुए हैं। धन के लोभ में मानव घृणित से घृणित दुष्कर्म करने को तैयार है। वापस आश्रम लौटकर महर्षि ने सुपर्ण से पूछा, 'संसार कैसा लगा?'

उसने कहा, 'गुरुदेव, बड़े-बड़े विद्वान् तक धन-संपत्ति के लिए पतनोन्मुख होने को तत्पर दिखाई दिए। सद्गृहस्थ माने जाने वाले लोग भी पारस

पत्थर के बदले पतिव्रता पत्नी को सौंपने को तैयार थे। उन जैसा पतित कहाँ मिलेगा?'

महर्षि ने कहा, 'सुपर्ण, तुम अपने को क्या कम पतित मानते हो, जो वर्षों की साधना-तपस्या से प्राप्त महादीक्षा का तिरस्कार कर क्षुद्र पारस के लिए मचल उठे? तुम अपने पतन की ओर दृष्टि डालो।' महर्षि के शब्द सुनकर सुपर्ण पश्चाताप के आँसू रो पड़ा।

●●●

139.

तुम अधम नहीं हो

मिथिला नगरी का एक मेहतर अयोध्या में आकर रहने लगा था। वह सीता-राम का परम भक्त और सेवा भावी था। वह श्रीरामजी के मंदिरों में आने वाले तीर्थयात्रियों के लिए रास्ता साफ करता और हर क्षण प्रभु का जाप करता रहता था।

उसे पता चला कि सीताजी के एक परम भक्त साधु सीतासरनजी भी अवध में रहकर भक्ति और उपासना में लीन रहते हैं। वे विनम्रता की साक्षात् मूर्ति हैं। वह सेवक उनकी कुटिया में जा पहुँचा। सीतासरनजी सरयू नदी में स्नान करने के लिए कुटिया से बाहर निकले, तो उन्होंने उसे बाहर खड़े देखा। उन्होंने पूछा, 'तुम कौन हो?' उसने उत्तर दिया, 'महाराज, मैं मिथिला का रहनेवाला हूँ। जनकजी के परिवार का मेहतर हूँ।' यह सुनते ही संत सीतासरनजी ने उसे साष्टांग प्रणाम किया और कहा, 'मेरे भाग्य जग गए कि महारानी सीताजी के पीहर के सेवक के दर्शन का सौभाग्य मिला।'

उस व्यक्ति ने संकोच से कहा, 'बाबा, आप साधु हैं, मुझ अधम को प्रणाम कर आपने अच्छा नहीं किया। मुझे पाप का भागी बना डाला।'

संत ने कहा, 'अधम जाति से नहीं दुष्कर्म से बनता है। तुम सीता महारानी के सेवक हो, निश्छल हृदय भक्त हो। अपने को अधम मानने का संशय न पालना। अधम तो वे हैं, जो दूसरों को नीच मानते हैं।'

एक दिन सीता रानी ने सीतासरन से सपने में कहा, 'मैं तुम्हारी विनम्रता और मेरे सेवक के प्रति श्रद्धा-भावना से प्रसन्न हूँ। जब तुम उसे साष्टांग प्रणाम करते हो, तो समझो कि मुझे ही नमन कर रहे हो।' संत सीतासरन गद्गद हो उठे।

●●●

140.

अठारह पाप कर्म

रावण से युद्ध के दौरान लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए, तो हनुमानजी ने संजीवनी बूटी लाकर उनकी बेहोशी दूर की। तंद्रा टूटने पर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा, 'भ्राता, मूर्च्छित होना अकारण नहीं हो सकता। शास्त्रों में अठारह दोष बताए गए हैं, जिनके कारण प्राण संकट में पड़ जाते हैं। तुमने जाने-अनजाने किसी की झोंपड़ी को नुकसान तो नहीं पहुँचाया? किसी को निमंत्रण देकर बिना भोजन कराए तो नहीं लौटा दिया? कभी किसी गाय को चरने या पानी पीने से तो नहीं रोका? कभी किसी का अनजाने में धन तो नहीं हड़प लिया?' श्रीराम ने एक-एक कर अठारह दोषों के बारे में लक्ष्मणजी से पूछा।

लक्ष्मण ने कहा, 'भ्राताश्री, मैंने उपरोक्त दोषों में एक भी नहीं किया, परंतु तीन दोषों के कारण मुझे प्राणों का संकट झेलना पड़ा। पहला दोष था, आप स्वर्ण मृग के पीछे गए और मुझे माता सीता की रखवाली का दायित्व सौंप गए, परंतु मैंने आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया। दूसरा, मैंने निर्दोष भरत पर संशय किया और तीसरा निद्राजित होते हुए भी एक दिन मैं सूर्योदय के बाद तक वन में सोता रहा। मुझे लगता है कि इन दोषों के कारण ही मेरे प्राणों पर संकट आया।'

भगवान् श्रीराम ने कहा, 'नित्य नैमित्तिक कर्म में चूक करना भी पाप है। सूर्य की ओर मुँह करके थूकना भी अधर्म है। किसी के बगीचे से बिना पूछे फल-फू ल तोड़ना, दूध पीते बछड़े को गाय से अलग करना, वृक्षों में आग लगाना आदि कर्म भी धर्मशास्त्रों में घोर पाप कर्म बताए गए हैं।'

●●●

141.

धन की सार्थकता

एक बार देवराज इंद्र आचार्य बृहस्पति के सत्संग के लिए पहुँचे। वहाँ देवी लक्ष्मी की महिमा की चर्चा होने लगी।

आचार्य बृहस्पति ने कहा, 'माँ लक्ष्मी जिस पर कृपा करती हैं, वह धनवान और समृद्ध बन जाता है, किंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि धन-संपत्ति का उपयोग सदैव सद्कार्यों के लिए करना चाहिए। यदि धन-संपत्ति का गलत तरीके से उपयोग किया जाता है, तो कुछ ही समय में व्यक्ति धनपति से कंगाल बन जाता है।'

देवराज इंद्र ने पूछा, 'आचार्यश्री, धनाढ्य को किन-किन सद्कार्यों पर धन का उपयोग करना चाहिए?'

आचार्य बृहस्पति ने बताया, 'लोकोपकार के कार्यों पर धन खर्च करना ही उसका सदुपयोग है। जल का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। अत: जो व्यक्ति कुएँ खुदवाता है, बावड़ी-तालाब बनवाता है और बाग-बगीचों का जीर्णोद्धार करता है, वह न सिर्फ इस लोक में, बल्कि स्वर्गलोक में भी प्रतिष्ठित होता है।'

आचार्यश्री ने आगे कहा, 'धर्मशाला, देवालय, विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय जैसे लोकोपकारी कार्यों में धन खर्च करने वाले को अनेक यज्ञों और उपासना का पुण्य प्राप्त होता है। वृक्ष लगाने वाले की कीर्ति भी लोक-परलोक में बनी रहती है। चूँकि वृक्ष अपने फू लों से देवताओं को, फलों से पितरों, निरीह पशु-पक्षियों और रोगियों को तृप्त करते हैं तथा अपनी छाया से यात्रियों की सेवा करते हैं और वातावरण को सुखद बनाते हैं, अत: पौधारोपण पर खर्च किया गया धन सार्थक और पुण्यदायक है।'

●●●

142.

अनूठी संपदा

राजकुमार सिद्धार्थ माता-पिता और महल का त्याग करने के वर्षों बाद महात्मा बुद्ध के रूप में कपिलवस्तु पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचते ही यह समाचार फैल गया कि जो राजकुमार कभी सुंदर और सज्जित रथों पर सवार होकर निकला करता था, आज भिक्षा पात्र हाथ में लिए भिक्षा माँगता घूम रहा है। बुद्ध और उनके शिष्यों के दर्शन के लिए नगर के लोग आने लगे। बुद्ध के पिता स्वयं महल से बाहर निकले और उन्होंने पुत्र को गले से

लगाया। वे उन्हें आदर सहित महल के अंदर ले गए।

महल में उन्हें उच्चासन पर बैठने को कहा गया।

बुद्ध ने कहा, 'मैं आपका पुत्र हूँ। आपके सामने उच्चासन पर कैसे बैठ सकता हूँ?'

अचानक बुद्ध ने कहा, 'महाराज, यह तो आप जानते ही हैं कि प्राचीन प्रथा के अनुसार पुत्र जब बाहर जाता है और कुछ अर्जित कर लौटता है, तो उसमें से सबसे बहुमूल्य रत्न अपने पिता के सामने उपस्थित करता है। आज्ञा दें, तो मैं अपना अर्जित कोश आपके चरणों में उपस्थित कर दूँ।' उन्होंने आगे कहा, 'जो कोश मैं यहाँ उपस्थित कर रहा हूँ, वह सांसारिक क्षणिक वस्तुओं का नहीं है। यह शाश्वत ज्ञान का कोश है।' उन्होंने वहाँ सत्य, अहिंसा, सदाचार का उपदेश सुनाया, तो सभी उस अलौकिक धर्मज्ञान-संपदा को पाकर कृतकृत्य हो उठे। उस अनूठी ज्ञान-संपदा से राजा के हृदय को पहली बार संतोष और शांति प्राप्त हुई। इसके बाद पूरा परिवार ही सांसारिक सुख-संपत्ति का परित्याग कर धर्म प्रचार में संलग्न हो गया।

●●●

143.

शुभ कर्मों के बीज

गुरु नानकदेवजी जगह-जगह जाकर सदाचार का पालन करने, भगवान् की भक्ति, पवित्र नाम के जाप और गरीब-असहायों की सेवा का उपदेश दिया करते थे। वे अकसर कहा करते थे, 'अपना-अपना काम अथवा कर्तव्यों का पालन करते हुए यदि हम भगवान् का स्मरण करें, तो किसी अन्य साधना की जरूरत नहीं होती है।'

एक नगर में उन्होंने श्रद्धालुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'जो सत्य को व्रत मानते हैं, संतोष को तीर्थ, ईश्वरीय ज्ञान और ध्यान को स्नान, दया को ईश्वर की प्रतिमा और क्षमा को जाप की माला, वे सर्वाधिक ईश्वरीय कृपा का प्रसाद पाते हैं।'

गुरुजी कहते हैं, 'ईश्वर दुराग्रही तपस्या अथवा विभिन्न धार्मिक वेश-भूषा से प्रसन्न नहीं होते। वे केवल मानव की सेवा, प्रेम और संयमी जीवन से प्रसन्न होते हैं। सत्य, संतोष और सदाचार का पालन कर पाप को अपने मन से निर्वासित कर दें, तभी प्रभु कृपा की वर्षा करेंगे।'

एक जगह गुरु नानकदेवजी ने कहा है, 'शरीर को मानो खेत, शुभ कर्मों के बोओ बीज। ईश्वर नाम से करो सिंचाई और हृदय को बनाओ किसान। तब तेरे हृदय में ईश्वर अंकुरित होगा और फिर तुझे निर्वाण पद की फसल मिलेगी।'

गुरु नानकदेवजी ऐसे दिव्य पुरुष थे, जिनके दर्शन, सत्संग व पवित्र वाणी के प्रताप से असंख्य लोग अपने दुर्गुण त्यागकर सदाचार के मार्ग पर चलने को सहर्ष तैयार हो जाते और अपना मानव जीवन सफल बना लेते थे।

●●●

144.

आँखें पहचान न पाईं

एक साधु था। एक दिन वह श्मशान में बैठकर चिता की आग में रोटी सेंक रहा था। शिव-पार्वती अचानक उधर से निकले। पार्वतीजी ने उस साधु को देखा, तो दु:खित होकर शंकरजी से बोलीं, 'इस बेचारे को चूल्हे की आग भी नसीब नहीं है। आप इस साधु की दरिद्रता दूर कर दीजिए।'

पार्वतीजी के आग्रह पर शंकरजी एक भिखारी का रूप धारण कर उसके पास पहुँच गए और उससे रोटी माँगी। साधु ने कहा, 'मेरे पास चार रोटियाँ हैं। दो तू ले जा, शेष दो से मैं अपनी क्षुधा मिटा लूँगा।'

शंकरजी खुश होकर असली रूप में आ गए। वे बोले, 'तुमने भूखे को रोटियाँ दीं। वर माँगो।'

साधु अभिमान में चूर होकर बोला, 'अरे भिखमंगे, भगवान् बनने का स्वांग न रच। तूने रोटियाँ माँगी, मैंने दे दीं। आया था माँगने और अब चला है वर देने। मुझे क्षुधा मिटा लेने दे।'

पार्वती वृक्ष की ओट में खड़ी देख रही थीं। शंकरजी लौटे, तो वे बोलीं, 'अभिमान के कारण इसकी आँखों पर परदा पड़ गया है। आपको पहचान नहीं पाया। वास्तव में दया का पात्र ऐसा ही व्यक्ति होता है।' चूँकि शंकरजी को साधु ने भोजन परोसा था, इससे खुश होकर उन्होंने उसे शिवलोक भेज दिया।

●●●

145.

सेवा ही भक्ति है

महिला संत राबिया पशु-पक्षियों, असहायों और रोगियों की सेवा में हमेशा तत्पर रहा करती थीं। यात्रा करती हुई एक बार वे मक्का पहुँचीं। एक दिन इब्राहिम उनके सत्संग के लिए पहुँचे। उन्होंने देखा कि संत राबिया एक बीमार कुत्ते का घाव धोने के बाद मलहम लगा रही हैं।

इब्राहिम उनकी भावना देख अत्यंत प्रभावित हुए। उन्होंने पूछा, 'आप इबादत के क्षेत्र में बहुत ऊपर पहुँच गई हैं। आप एक सिद्ध संत हैं। आपकी इस सफलता का रहस्य क्या है?'

राबिया ने कहा, 'जहाँ तक बंदगी की बात है, मैं नमाज दिन में एक बार ही अदा कर पाती हूँ, अधिकतर समय मैं खुदा के बंदों की खिदमत में लगाती हूँ। मक्का तक पहुँचने में मुझे पाँच वर्ष लग गए। रास्ते भर राहगीरों, अपंगों-बीमारों की सेवा करती रही। आदमी तो क्या, मुझसे निरीह पशु-पक्षियों की पीड़ा भी सहन नहीं हो पाती। मैं सेवा को ही खुदा की नेक बंदगी मानती हूँ। मैं नमाज अता करते समय यही प्रार्थना करती हूँ कि जब तक जिस्म जिंदा है, ऐसे ही जरूरतमंदों की सेवा करती रहूँ।' कुछ क्षण रुककर उन्होंने फिर कहा, 'मैंने पग-पग पर यह अनुभव किया है कि दूसरों की सेवा में जो संतोष मिलता है, वह शरीर से सुख भोगने पर नहीं मिलता।'

इब्राहिम राबिया की सफलता का रहस्य समझ गए। उन्होंने अपनी जीवनचर्या बदल दी। अब वे प्रतिदिन रोगियों और अपंगों की सेवा करने लग गए। उन्हें स्वत: अनुभूति होने लगी कि खुदा उन पर पहले से अधिक दया की वर्षा करने लगे हैं।

●●●

146.

सत्य ही सर्वोपरि धर्म

एक दिन पार्वतीजी भगवान् शंकर के पास बैठी सत्संग कर रही थीं। उन्होंने पूछ लिया, 'आपकी दृष्टि में सबसे बड़ा धर्म क्या है?'

शंकरजी ने जवाब दिया, 'सबसे बड़ा धर्म है सत्य। सत्य पर सदैव अडिग रहने में ही कल्याण है और सबसे बड़ा अधर्म असत्य है।'

शंकरजी ने कहा, 'सत्य का त्याग कर देने वाला विभिन्न दुर्गुणों का शिकार बनकर अपना जीवन कष्टमय बना लेता है, जबकि सत्य का पालन करनेवाला न कभी भयभीत होता है और न ही किसी प्रकार के प्रपंच और लोभ-लालच के आकर्षण में फँसता है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने शुभ अथवा अशुभ कर्मों में स्वयं को ही साक्षी माने। मन, वाणी और क्रिया द्वारा कभी गलत या पाप कर्म करने की इच्छा न करे। यह ध्यान रखना चाहिए कि जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है। अपने किए का फल उसे स्वयं ही भोगना पड़ता है, दूसरा कोई उसे भोगने का अधिकारी नहीं है।'

भगवान् शंकर चेतावनी देते हुए कहते हैं, 'पार्वती, तृष्णा के समान कोई दु:ख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है। समस्त कामनाओं का परित्याग कर देने वाला मनुष्य ही ब्रह्म भाव को प्राप्त करता है। यह महान् आश्चर्य की बात है कि मनुष्य की इंद्रियाँ प्रतिक्षण जीर्ण हो रही हैं और उसकी आयु नष्ट हो रही है, फिर भी वे आकांक्षाओं में, प्रपंचों में लगे रहकर अपना समय गँवा रहे हैं।'

●●●

147.

सबमें भगवान् को देखो

स्वामी रामकृष्ण परमहंस निश्छल हृदय के साधक संत थे। वे सभी संप्रदायों के अवतारों और देवी-देवताओं को एक ही भगवान् का रूप मानते थे। वे कहा करते थे कि छोटे-बड़े सभी में भागवत ज्योति विद्यमान रहती है।

एक दिन वे कोलकाता के दक्षिणेश्वर काली मंदिर में बैठे हुए थे। किसी व्यक्ति ने दरिद्र से दिखने वाले एक युवक को पास आते देखकर झिड़क दिया। स्वामी रामकृष्ण ने खड़े होकर उस व्यक्ति को प्रणाम किया और झिड़कने वाले से बोले, 'अरे, किसी के प्रति अपशब्द कहना अधर्म है। यह भोला व्यक्ति गया की फल्गु नदी के समान है। ऊपर से तो फल्गु नदी के तट पर बालू ही दिखाई पड़ता है, पर नीचे पवित्र जल की धारा बहती रहती है। इस भोले, निश्छल और दरिद्र व्यक्ति के हृदय में मेरे इष्टदेव साक्षात् विराजमान हैं।'

एक व्यक्ति रामकृष्ण परमहंस के सत्संग के लिए आया। उसने पूछा, 'बाबा, मैं अनेक वर्षों से पूजा-उपासना करता आ रहा हूँ, लेकिन भगवान् की प्राप्ति नहीं हो पाई। क्या गृहस्थी छोड़ पूरी तरह साधु बनकर उपासना करने से ही मुझे भगवान् मिलेंगे?'

स्वामीजी ने कहा, 'कलियुग में लोगों के लिए भक्ति और प्रेम का पथ ही सुगम है। गृहस्थी में रहते हुए भी शुद्ध अंत:करण के लिए जहाँ भगवन्नाम का जप करना चाहिए, वहीं प्रतिदिन अपने हाथों से अपंग, बीमार और दरिद्र की सेवा करनी चाहिए। प्रत्येक प्राणी में भगवान् के दर्शन करने का अभ्यास करो, फिर तुम अनंत सुख की अनुभूति करने लगोगे।'

जिज्ञासु की समस्या का समाधान हो गया।

●●●

148.

धन का उपयोग

धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि धन का सदुपयोग या तो जरूरतमंदों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अथवा अपने परिवार व समाज के लिए मर्यादापूर्वक उपभोग करने में निहित है। जो व्यक्ति कृपण होता है, उसका धन मिट्टी-पत्थर के समान पड़ा रह जाता है। ऐसा धन असीम दु:ख का कारण भी बनता है।

आदि शंकराचार्यजी ने कहा था, 'दानं संविभाग' अर्थात् संपत्ति का सम्यक् विभाजन ही दान है। *बाइबिल* में कहा गया है कि वैसा दान ही सार्थक होता है, जिसमें दाएँ हाथ से दिए गए दान का पता बाएँ हाथ को भी न चले।

माघ जितने बड़े कवि थे, उतने ही बड़े दानी। अपने दरवाजे पर आने वाले याचक को दान देने से उन्हें संतोष मिलता था। एक दिन राजा ने राजसभा में उनके द्वारा रचित काव्य की पंक्तियाँ सुनकर उन्हें इनाम के रूप में धन दिया। उन्होंने तमाम धनराशि रास्ते में याचकों को बाँट दी। घर पहुँचे, तो द्वार पर भी याचक खड़ा था। उसे देने के लिए उनके पास कुछ नहीं बचा था। याचक ने आँखों में आँसू भरकर कहा, 'मेरी बूढ़ी माँ बीमार है। दवा के लिए भी पैसे नहीं हैं।'

माघ ने सुनते ही द्रवित होकर प्रार्थना की, 'हे मेरे प्राण, इस विवशता में आप स्वयं मुझे छोड़ चलिए। आत्महत्या पाप है, अन्यथा मैं प्राण त्याग देता।'

अचानक उनका एक मित्र पहुँचा। वह देखते ही सब समझ गया। उसने अपनी जेब से मुद्रा निकाली और याचक को दे दी।

माघ ने मित्र में भी भगवान् के दर्शन किए, जिसने उनकी लाज बचा ली।

●●●

149.

तुम तो भक्ति की खान हो

शबरी मतंग ऋषि की शिष्या थीं। वह अत्यंत विनम्र और भक्तिपरायण महिला थीं। एक दिन मतंग ऋषि ने उनसे कहा, 'अब मेरा अंतिम समय निकट आ गया है। तुम इसी आश्रम में रहते हुए भगवान् की भक्ति में लगी रहना। एक दिन श्रीराम लक्ष्मण सहित यहाँ आएँगे। तुम उनके दर्शन कर धन्य हो उठोगी। उन्हें सुग्रीव से मिलवाने की व्यवस्था कर देना।'

कुछ दिनों बाद मतंग ऋषि ने देह त्याग दी।

एक दिन धनुर्धारी लक्ष्मण सहित श्रीराम आश्रम में आ पहुँचे। शबरी आत्मविभोर होकर उनके चरणों में लोट गई और उन पर फूलों की वर्षा की। उन्होंने चुने हुए मीठे-मीठे बेर आदि फल उनके सामने रख दिए। श्रीराम बेरों को स्वाद ले-लेकर खाने लगे।

शबरी ने विनम्रता से हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभु, मैं पूजा-पाठ, मंत्र-जप कुछ नहीं जानती। गुरु मतंग के धर्मोपदेश सुनकर आपके दर्शन की बाट जोहती रहती थी।'

श्रीराम ने शबरी से कहा, 'संतों का सत्संग करना, भगवान् के कथा प्रसंगों में रुचि रखना, कपट त्यागकर निश्छल हृदय बनना, संयम और शील का पालन करना, संतोष और सरलता का जीवन जीना, दूसरों के दोष नहीं देखना जैसे गुण नवधा भक्ति के अंग हैं। जिस व्यक्ति में इनमें से एक भी गुण होता है, वह मुझे प्रिय होता है, किंतु तुममें तो नवधा भक्ति के सभी गुण विद्यमान हैं। मैं स्वयं तुम जैसी भक्तजन के दर्शन कर कृतकृत्य हो उठा हूँ।' श्रीराम की विनम्रता देखकर शबरी भावविह्वल हो उठी।

●●●

150.

सद्कर्मों में देर न करो

भगवान् महावीर सदाचार का उपदेश देते हुए एक गाँव में पहुँचे। तीर्थंकर के आने की सूचना मिलते ही अनेक लोग सत्संग-दर्शन के लिए उनके पास पहुँच गए। गौतम नामक एक भक्त ने जिज्ञासा के स्वर में उनसे पूछा, 'पूर्ण निर्वाण किसे प्राप्त होता है?'

महावीर ने बताया, 'जो मनुष्य निष्कपट तथा सरल होता है, वही शुद्‌ध साधक निर्वाण का अधिकारी बनता है। जिसकी आत्मा शुद्‌ध होती है, धर्म उसके पास ही ठहर सकता है।'

भगवान् महावीर ने आगे समझाते हुए कहा, 'जब तक शरीर सशक्त है, तब तक उसका उपयोग धर्म की साधना के लिए करना चाहिए। कुछ लोग सद्‌कर्म-साधना में यह कहते हुए देरी करते हैं कि आगे कर लेंगे। ऐसे आलसी लोग भोग-विलास में ही अपना जीवन समाप्त कर लेते हैं। ऐसे मूर्ख मनुष्य के भाग्य में केवल पछताना ही शेष रह जाता है।'

तीर्थंकर ने उदाहरण के साथ समझाते हुए कहा, 'जैसे वृक्ष का पत्ता पतझड़ में पीला होकर गिर जाता है, वैसे

ही मनुष्य का जीवन भी आयु समाप्त होने पर सहसा नष्ट हो जाता है। इसलिए सतत् सद्कर्म करते रहने में ही कल्याण है। जो मनुष्य अपना मानव जीवन सफल करना चाहता है, उसे पाप बढ़ाने वाली मनोवृत्तियों, जैसे—क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों दोषों को सदा के लिए छोड़ देना चाहिए। शांति से क्रोध को मारो, नम्रता से अभिमान को जीतो, सरलता से मोह-माया का नाश करो और संतोष से लोभ को काबू में लाओ।'

तीर्थंकर महावीर ने चंद शब्दों में ही मानव जीवन को सफल बनाने के उपाय बता दिए।

●●●

151.

श्रीकृष्ण की स्पष्टवादिता

भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा के पिता सत्राजित को देवताओं से एक दिव्य मणि उपहार में मिली थी। शतधन्वा नामक एक धूर्त व्यक्ति ने सत्राजित की हत्या कर स्यमंतक नामक वह दिव्य मणि छीन ली। पिता की मौत का समाचार पाकर सत्यभामा को अत्यंत दुःख हुआ। श्रीकृष्ण उस समय वारणावर्त नगर में थे। वे द्वारिका पहुँचे। उन्हें जैसे ही अपने ससुर की हत्या का समाचार मिला, उन्होंने शतधन्वा का पीछा किया और मिथिला प्रदेश में घेरकर सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला, लेकिन स्यमंतक मणि उसके पास नहीं मिली।

पता यह चला कि शतधन्वा ने यह मणि श्वफल्क के पुत्र अक्रूर को दे दी थी। अक्रूर को पता चला कि श्रीकृष्ण उस दिव्य मणि की खोज कर रहे हैं, तो उन्होंने यादवों की सभा में स्यमंतक मणि श्रीकृष्ण को सौंपने का प्रस्ताव रखा।

श्रीकृष्ण ने कहा, 'सत्राजित के संसार में न रहने से अब यह मणि राष्ट्र की धरोहर है। कोई ब्रह्मचारी और संयमी व्यक्ति ही इस मणि को धरोहर के रूप में रखने का अधिकारी है।'

सभी श्रीकृष्ण से वह मणि रखने का अनुरोध करने लगे, लेकिन श्रीकृष्ण ने कहा, 'मैंने बहु विवाह किए हैं। इसलिए मुझे इसे रखने का अधिकार नहीं है।'

श्रीकृष्ण जानते थे कि अक्रूर पूर्ण संयमी, सदाचारी और ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने कहा, 'अक्रूर, इसे तुम ही अपने पास रखो। तुम जैसे पूर्ण संयमी के पास रहने में ही इस दिव्य मणि की शोभा है।'

श्रीकृष्ण की विनम्रता देखकर अक्रूर नतमस्तक हो उठे।

●●●

152.

सच्चा धार्मिक

मगध के राजा श्रोणिक परम धार्मिक और प्रजा हितैषी थे। भगवान् महावीर के उपदेशों का वे पूरी तरह पालन करते थे। एक बार उन्होंने घोषणा कराई कि जो व्यक्ति धर्म के मार्ग का अनुसरण करेंगे और श्रावक व्रत धारण करेंगे, उनसे चुंगी नहीं ली जाएगी। यह घोषणा होते ही अधिकांश दुर्व्यसनी अपने को श्रावक बताकर इस घोषणा का लाभ उठाने लगे। राज्य की आय बहुत कम हो गई। एक दिन राजस्व अधिकारी ने राजा को यह बात बताई। यह सुनकर राजा चिंतित हो गए। महामंत्री बुद्धिमान् था। उसने कहा, 'राजन्, आप चिंता न करें। मैं असली और नकली श्रावक की पहचान कर लूँगा।'

अगले दिन एक मैदान में दो तंबू लगाए गए। एक का रंग सफेद था और दूसरे का काला। मैदान में उपस्थित प्रजा को कहा गया कि जो सच्चे व्रतधारी श्रावक हैं, वे सफेद रंग वाले तंबू में पहुँचें। तंबू खचाखच भर गया।

राजा मंत्री के साथ वहाँ पहुँचे। सभी लोगों ने सच्चे श्रावक होने का दावा किया। राजा मंत्री के साथ काले तंबू में भी पहुँचे। उसमें बहुत कम लोग बैठे थे। उन लोगों ने कहा, 'राजन्, हम अपने को सच्चा श्रावक नहीं मानते। हम श्रावक व्रत का पालन करने की कोशिश करते हैं, लेकिन जाने-अनजाने पाप कर्म हो ही जाते हैं।'

राजा समझ गए कि ये लोग ही असली श्रावक हैं। उन्होंने मंत्री से कहा, 'सच्चे और फर्जी श्रावकों की पहचान हो गई है। कपटी लोगों की जगह इन्हें ही श्रावक मानकर सुविधाएँ दी जाएँ।'

●●●

153.

सच्चा प्रायश्चित्त

प्राचीन समय की बात है। पुरुषोत्तमपुरी में रहनेवाला भद्रतनु नामक ब्राह्मण कुसंग में पड़कर पाप कर्मों में लिप्त रहने लगा। वह पिता के श्राद्ध के दिन भी दुष्कर्म में लगा था। किसी ने उससे कहा, 'तुझे धिक्कार है कि अपने पिता का श्राद्ध न कर तू आज भी अधर्म के कामों में प्रवृत्त है।' इस वाक्य ने उसकी आँखें खोल दीं। वह मार्कंडेय मुनि के पास पहुँचा और अपनी व्यथा से उन्हें परिचित कराया।

मुनि ने कहा, 'तुम्हारी बुद्धि पाप से अलग हुई, इसे भगवान् की कृपा मानो। हृदय से प्रायश्चित्त करने मात्र से तमाम पाप कर्मों से मुक्ति मिल जाती है।' उन्होंने उसे दंत मुनि की शरण में जाने को कहा।

दंत मुनि के पास पहुँचकर भद्रतनु ने रोते हुए कहा, 'महात्मन, मुझे पाप-कर्मों से मुक्ति दिलाने का उपाय बताएँ।'

मुनि ने कहा, 'प्रायश्चित्त का यही तरीका है कि भविष्य में कुसंग न करने का दृढ़ संकल्प लो। पाखंड, काम, क्रोध, लोभ आदि का परित्याग कर निरंतर ओम नमो भगवते वासुदेवाय: मंत्र का जाप करो। इसके फलस्वरूप

तुम्हारे किए गए तमाम पाप कर्म क्षीण हो जाएँगे।'

भद्रतनु भगवद् भजन में लग गया। उसकी भक्ति से भगवान् विष्णु प्रसन्न हो उठे। एक दिन उन्होंने दर्शन देकर उसे वर माँगने को कहा।

भद्रतनु ने कहा, 'मुझे न कोई सांसारिक सुख चाहिए और न मोक्ष की कामना है। जन्म-जन्मांतर तक आपके चरणों में अनुराग अविचल रहे—यही आकांक्षा करता हूँ।' भगवान् ने उसे यही वर दिया। कालांतर में भद्रतनु की गणना प्रमुख विष्णु भक्तों में हुई।

●●●

154.

देवी-कृपा पाने के उपाय

एक दिन देवर्षि नारद भगवान् श्रीनारायण के दर्शन के लिए पहुँचे। उन्होंने प्रश्न किया, 'भगवन्, देवी भगवती की कृपा प्राप्त करने का अधिकारी कौन होता है? देवी को प्रसन्न करने केक्या उपाय हैं?'

श्रीनारायण ने कहा, 'देवर्षि, 'आचार: प्रथमो धर्म:।' यानी आचार ही प्रथम धर्म है। ऐसा श्रुतियों तथा स्मृतियों में कहा गया है। भगवती की आराधना करने वाले को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए। यह आयु, धन और संपत्ति बढ़ाता है और इससे सुख की प्राप्ति होती है। देवी के उपासक को ब्रह्म मुहूर्त में जागकर आचार संबंधी नियमों का पालन करना चाहिए। उस समय सोने वालों की सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। प्रात:कालीन स्नान के बाद संध्या-वंदन तथा गायत्री का जाप करनेवाला ब्रह्म की अनुभूति से अनूठा सुख-संतोष प्राप्त करता है। उसे देवी भगवती का आशीर्वाद प्राप्त होता है।'

श्रीनारायण ने आगे कहा, '*श्रीमद्देवीभागवत* में कहा गया है कि लोगों को धर्ममय जीवन बिताना चाहिए। दुष्टों की संगति का त्याग कर प्रतिदिन दान देते रहना चाहिए। दया के समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसा के समान पापकर्म नहीं। जो सभी प्राणियों के प्रति दया भाव रखता है, अतिथियों को संतुष्ट करता है, वृद्धों और माता-पिता की सेवा करता है, उस पर देवी भगवती शीघ्र ही प्रसन्न हो जाती हैं।'

देवी भगवती एक स्थान पर कहती हैं कि मनुष्य को भाग्य तथा पुरुषार्थ, दोनों का आदर करना चाहिए, क्योंकि बिना उद्योग किए कार्य सिद्धि कैसे हो सकती है?

●●●

155.

सत्संग का महत्त्व

श्रीराम ने राज्याभिषेक के बाद एक बार अपने गुरुदेव वशिष्ठजी के सान्निध्य में अयोध्यावासियों की एक गोष्ठी

आयोजित की। उसमें उन्होंने मानव जन्म को सफल बनाने पर बल देते हुए सभी को धर्म और सदाचार का पालन करने की प्रेरणा दी। श्रीराम ने कहा, 'धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि मानव शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है। जो व्यक्ति प्रत्येक क्षण को सद्कर्मों में नहीं लगाता, वह अंत में घोर दु:ख पाता है।'

श्रीराम ने सदाचार का पालन करने एवं भक्ति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए कहा, 'ज्ञान अगम है और उसकी प्राप्ति में अनेक विघ्न हैं। भक्ति सरल-स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है। प्राणी संतों और सद्पुरुषों के सत्संग से ही भक्ति की ओर उन्मुख होता है। अत: अहंकार त्यागकर विनयपूर्वक भगवान् की भक्ति में रत हो जाना चाहिए। इसके लिए यज्ञ, जप-तप और उपवास की भी आवश्यकता नहीं है। सरल स्वभाव और मन में कुटिलता नहीं रखने वाला संतोषी व्यक्ति भक्ति के माध्यम से अपना जीवन सफल बना सकता है।'

उन्होंने आगे कहा, 'जो फल की इच्छा किए बगैर कर्म करता है, जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो मुक्ति को भी तृण के समान समझता है, वह परम अनूठा सुख प्राप्त करता है। ऐसा भक्त मुझे सर्वप्रिय है।'

लक्ष्मणजी को राजनीति का उपदेश देते हुए प्रभु ने कहा, 'राजा को चाहिए कि वह अपने सुख के लिए दीन-दु:खी को पीड़ा न दे। सताया जाने वाला मनुष्य दु:खजनित क्रोध से राजा का विनाश कर डालता है।'

●●●

156.

स्वर्ग का राज्य

ईसा मसीह कहा करते थे कि स्वर्ग का राज्य पाने के लिए प्रेम में पूरी तरह डूब जाना बहुत जरूरी है। एक बार एक श्रद्धालु उनके पास पहुँचा। उसने पूछा, 'आप स्वर्ग के राज्य की बात कहते हैं। इस कठिन मंजिल तक कैसे पहुँचा जा सकता है?'

ईसा ने कहा, 'हर कोई स्वर्ग का राज्य प्राप्त कर सकता है, क्योंकि वह हर प्राणी के भीतर विद्यमान है। जब आदमी यह समझ लेगा कि स्वर्ग उसके हृदय में मौजूद है, तो वह राग-द्वेष और घृणा को अपने पास फटकने नहीं देगा। प्राणी मात्र से प्रेम करनेवाला, अहंकार त्यागकर अपने को अन्यों से तुच्छ समझने वाला, दूसरों की सहायता को तत्पर रहनेवाला स्वर्ग के राज्य में ही तो रहता है।'

किसी ने ईसा से पूछा, 'अनेक श्रद्धालु आपके उपदेशों का पालन करते हैं। फिर भी वे दु:खी क्यों दिखाई देते हैं?'

ईसा ने कहा, 'खेत में बीज बोए जाते हैं। सबके सब एक से ही नहीं उगते। कुछ बीज पथरीली जमीन पर गिरते हैं, उनके अंकुर जल्दी सूख जाते हैं। जो अच्छी जमीन पर गिरते हैं, वे फलते-फूलते हैं। उनके आस-पास इतनी मिट्टी होती है कि वे उसमें अपनी जड़ों को जमा लें। इसी प्रकार मेरा उपदेश सुनने वाले कई बार लोभ-लालच और कुसंग में आकर गलत काम कर बैठते हैं। वे भटककर स्वर्ग का रास्ता भूल जाते हैं।' उन्होंने आगे कहा, 'पग-पग पर संभलकर चलने की जरूरत है। अहिंसा व प्रेम के मार्ग में बहुत भटकाव आते हैं। जो लोग उनकी उपेक्षा कर सीधे चलते रहते हैं, वे एक दिन मंजिल अवश्य प्राप्त कर लेते हैं।'

●●●

157.

मनुष्य रूप में देवता

एक दिन एक जिज्ञासु सत्संग के लिए महर्षि वेदव्यास के आश्रम में पहुँचे। बातचीत के दौरान एक सद्गृहस्थ श्रद्धालु ने उनसे प्रश्न किया, 'महर्षि, क्या मनुष्य भी किन्हीं उपायों से देवत्व प्राप्त कर सकता है?'

वेदव्यासजी ने उत्तर दिया, 'जो व्यक्ति अपना जीवन धर्मानुसार बिताता है, सद्गुणों-सद्वृत्तियों को अपना लेता है, वह मनुष्य रूप में देवता ही माना जाता है। सत्यवादी, जितेंद्रिय, दयालु, क्षमाशील, मृदुभाषी, लोभहीन, तपस्वियों व अतिथियों का सम्मान करनेवाला व्यक्ति एक प्रकार से देवता ही तो है। जिसका जीवन सत्संग, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय आदि में व्यतीत होता है, जिसका प्रत्येक दिन सत्कर्मों में बीतता है, उसे मनुष्य रूपी देवता मानना चाहिए। जो मनुष्य दुर्गुणों से मुक्त हो, नीतिशास्त्र के तत्त्व को जानने वाला हो और संतुष्ट रहता हो, वह देवस्वरूप है।'

वेदव्यासजी ने कुछ क्षण रुककर कहा, 'विश्वासघाती, कृतघ्न, व्रत का उल्लंघन करनेवाला, दुराचारी, मदिरापान करनेवाला व जुआ खेलनेवाला, पाखंडियों और दुर्व्यसनियों के संग रहनेवाला प्राणी मनुष्य के वेश में असुर है। जो दीनों और अनाथों को पीड़ा पहुँचाता है, निरीह जीव-जंतुओं की हत्या करता है, उसे पृथ्वी पर भार ही मानना चाहिए। ऐसे दुर्गुण से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का सर्वनाश करने के पाप के भागी बनते हैं, इसलिए सदैव सत्कर्मों में प्रवृत्त रहकर और सदाचार का पालन करके कोई भी व्यक्ति देवत्व प्राप्त कर सकता है।'

●●●

158.

धर्म ही सच्चा साथी है

आचार्य बृहस्पति देवताओं के गुरु थे। वे देवताओं को उपदेश देते हुए कहा करते थे, 'दुर्जनों की संगति तथा अहंकार से अनेक जन्मों के संचित पुण्य भी क्षीण हो जाते हैं। दुर्व्यसनी का साथ कभी नहीं करना चाहिए। साधुजनों और सत्य पर अटल रहनेवालों का सत्संग कर ही लोक-परलोक सुधारा जा सकता है।'

एक बार युधिष्ठिर बृहस्पतिजी के सत्संग के लिए पहुँचे। उन्होंने आचार्य से प्रश्न किया, 'देवगुरु, मनुष्य का सच्चा सहायक कौन है?'

आचार्य बृहस्पति ने बताया, 'राजन्, प्राणी अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही दु:ख से पार होता है और अकेला ही दुर्गति भोगता है। कुटुंबजन तो उसके मृत होते ही दो घड़ी रोते हैं, श्मशान में उसे अग्नि के हवाले कर वहाँ से मुँह फेरकर चल देते हैं। एकमात्र धर्म-सत्कर्म ही उस जीवात्मा का अनुसरण करता है। धर्म ही हमेशा सच्चा सहायक बना रहता है। अत: किसी भी कुटुंबजन के मोह में फँसकर कोई भी धर्मविरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए।'

धर्मनीति के तत्त्व रहस्य को बताते हुए आचार्य बृहस्पति ने कहा, 'जो बात खुद को अच्छी न लगे, वह दूसरों के प्रति भी नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार हमें कटु वचन और निंदा से दु:ख होता है, उसी प्रकार किसी की न तो निंदा करें, न कटु वचन बोलें और न ही किसी का अहित करें। यही धर्म तत्त्व है। सदा सबका हित करनेवाला और सबसे प्रेम करने में प्रवृत्त रहनेवाला सभी का प्रिय बना रहता है।'

युधिष्ठिर को अपनी जिज्ञासाओं का समाधान मिल गया।

●●●

159.

राजनीतिज्ञ हनुमान

अपने बड़े भाई बालि के अत्याचारों से सुग्रीव पीड़ित थे। बाली ने मद में चूर होकर सुग्रीव की पत्नी को उससे छीन लिया था। सुग्रीव को बालि के भय से राज्य छोड़कर वन में छिपने को मजबूर होना पड़ा। इसी समय भगवान् श्रीराम सीताजी की खोज करते हुए सुग्रीव के राज्य में पहुँचे। श्रीराम की शक्ति और उनकी न्यायप्रियता से सुग्रीव सुपरिचित थे। उन्होंने अपने सचिव हनुमान को श्रीराम के पास भेजकर बालि के उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने की गुहार लगाने का निर्णय किया।

हनुमान भगवान् श्रीराम के पास पहुँचे। अपना परिचय देने के बाद उन्होंने श्रीराम के समक्ष सुग्रीव की समस्या प्रस्तुत की। साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि सुग्रीव सीता माता का पता लगाने में पूर्ण सहयोग देंगे। श्रीराम हनुमान की तर्कपूर्ण बातें सुनकर हतप्रभ हो उठे। उन्हें लगा, जैसे कोई अत्यंत नीतिज्ञ विद्वान् उनसे बात कर रहा है।

श्रीराम ने अपने अनुज से कहा, 'लक्ष्मण, अपने राजा का पक्ष प्रस्तुत करते समय इन्होंने नीति और राजनीति की अनूठी निपुणता का परिचय दिया है। निश्चय ही हनुमान असाधारण ज्ञान और भक्ति-भाव से संपन्न महापुरुष हैं।'

भगवान् श्रीराम के शब्द सुनकर हनुमान बोले, 'प्रभु, मेरे अंदर कोई योग्यता नहीं है। यह तो आपकी असीम अनुकंपा है कि मुझ जैसे अकिंचन को इतना महत्त्व दे रहे हैं।' कहते-कहते हनुमान उनके चरणों में लोट गए।

●●●

160.

वाणी का महत्त्व

धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि शब्द ब्रह्म होता है। अत: एक-एक शब्द का उपयोग सोच-समझकर करना चाहिए। न किसी की निंदा करनी चाहिए और न ही व्यर्थ में किसी की प्रशंसा करनी चाहिए। हमेशा सत्य और प्रिय वचन

बोलना चाहिए। किसी को केवल प्रसन्न करने के लिए भी शब्दों का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

एक बार भर्तृहरि ने चातक को संबोधित करते हुए एक श्लोक की रचना की। उसमें कहा गया था, 'प्रिय मित्र चातक, क्षणभर के लिए मेरी बात ध्यान से सुनो। आकाश में कई प्रकार के बादल होते हैं, किंतु सभी तृप्त नहीं करते। उनमें से कुछ तो पृथ्वी पर जल बरसाते हैं और कुछ व्यर्थ ही गरजते हैं। अत: तुम जिसको भी देखो, उसके सम्मुख दैन्यसूचक शब्दों का प्रयोग मत करो।'

महाभारत में कहा गया है, 'किसी से कठोर वचन न बोलो। कटुवचन रूपी बाण से आहत मनुष्य शोक और चिंता में डूबा रहता है। अत: गुणी जनों को दूसरों के प्रति निष्ठुर वचनों के प्रयोग से बचना चाहिए।' कहा गया है, 'नित पवित्र वचन बोलें। दूसरे के कटुवचन सह लें, परंतु किसी को कटुवचन बोलकर शब्दों और वाणी का दुरुपयोग न करें।'

भविष्य पुराण में कहा गया है, 'शीतल जल, चंदन का रस अथवा ठंडी छाया भी मनुष्य के लिए उतनी आह्लादकारी नहीं होती, जितनी मीठी वाणी।' इसीलिए भगवान् ने वाणी संयम को तप की संज्ञा दी है और बताया है कि जो वचन किसी को उद्विग्न करनेवाला न हो तथा सत्य, प्रिय और हितकारक हो, वही सार्थक वाणी है।

●●●

161.

पल-पल कीमती है

सभी संप्रदायों के धर्मग्रंथों में मानव जीवन को दुर्लभ और अनूठा बताया गया है। धर्माचार्यों, संत-महात्माओं, दार्शनिक और विचारकों ने अपने उपदेशों-संदेशों में हमेशा यही कहा है कि मनुष्य की आयु सीमित होती है। अत: जीवन के एक-एक पल का सदुपयोग करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

राजा विक्रमादित्य को संस्कृत का यह श्लोक अत्यंत प्रिय था—*प्रत्यहं प्रत्यवेक्षत नरच्चरितमात्मन:। किन्नु म पशुभितुलयं किन्नु सत्पुरुषैरिव।* अर्थात्, मेरे इस बहुमूल्य जीवन का जो दिन व्यतीत हो रहा है, वह पुन: लौटकर कभी नहीं आएगा। अत: प्रतिदिन हमें यह चिंतन करना चाहिए कि आज का जो दिन व्यतीत हुआ, वह पशुवत गुजरा अथवा सत्पुरुष की तरह। राजा विक्रमादित्य प्रतिदिन सवेरे शैया त्यागते ही भगवान् से प्रार्थना किया करते थे कि उनका वह दिन पूर्णरूपेण कर्तव्यपालन करने में, लोगों के हित चिंतन और भगवान् के पावन स्मरण में व्यतीत हो। उपरोक्त श्लोक एक दीप के समान हमेशा उनका मार्गदर्शन करता रहता था।

आदि शंकराचार्य ने भी इसी तरह कहा था, 'अरे मूढ़ मानव, न जाने कितने पुण्यों से पशु की जगह यह मानव योनि प्राप्त हुई है। यदि तूने इसे केवल भोग-विलास और ऐश्वर्य में बिता दिया, तो अंत में सिर पीट-पीटकर रोने के सिवा तेरे हाथ और कुछ नहीं आएगा। मनुष्य जीवन का एक-एक क्षण कीमती है। अत: उसे सद्गुणों को ग्रहण करने, भगवान् की भक्ति करने और सेवा-परोपकार जैसे सद्कर्मों में व्यतीत करने में ही भलाई है।'

●●●

162.

क्रोध अधर्म है

उत्तंक मुनि वन में रहकर एकांत साधना में लीन रहते थे। कौरव-पांडव, दोनों के प्रति वे वात्सल्य भावना रखते थे। वह सभी के कल्याण की कामना किया करते और प्राय: कहते कि प्रेम, करुणा और लोभ रहित व्यवहार से सभी का मन जीता जा सकता है। एक दिन उत्तंक मुनि की भेंट भगवान् श्रीकृष्ण से हुई। श्रीकृष्ण ने मुनि को प्रणाम किया, मुनि ने भी श्रीकृष्ण को मन-ही-मन नमन किया। बातचीत के दौरान मुनि ने पूछा, 'केशव, कौरव-पांडव सकुशल तो हैं।'

श्रीकृष्ण ने उन्हें बताया, 'दुर्योधन के दुराग्रह के कारण हाल ही में महाभारत युद्ध हुआ, जिसमें सभी कौरव मारे गए।'

मुनि ने यह सुना, तो वे हतप्रभ रह गए। उन्होंने क्रोध में भरकर कहा, 'कृष्ण, तुम्हारे रहते यह घोर अधर्म कैसे हो गया? निश्चय ही तुमने पांडवों से मिलकर छलपूर्वक कौरवों का विनाश किया होगा। मैं तुम्हें शाप दे सकता हूँ।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'मुनिवर, शाप देने में जल्दबाजी करके अपनी तपस्या के पुण्यों को नष्ट न करें। पहले कौरवों के अन्यायपूर्ण कृत्यों को जान लें।'

श्रीकृष्ण ने उन्हें पूरी बात बताई कि कैसे अंत तक समझौते का प्रयास किया गया था, लेकिन दुर्योधन के अहंकार व दुष्प्रवृत्ति के कारण ऐसा संभव न हो सका।

मुनि उत्तंक दुर्योधन के दुर्गुणों से परिचित थे। तमाम बातें सुनकर वह शांत हो गए। बोले, 'भगवन्, बिना सोचे-समझे क्रोध करना भी अधर्म है। मुझे क्षणिक क्रोध के पाप से क्षमा करें।'

श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया और लौट गए।

●●●

163.

मैं केवल भक्ति पद रचता हूँ

आंध्र प्रदेश के ताल्लपा गाँव में वर्ष 1424 में पैदा हुए अन्नमाचार्य भगवान् तिरुपति के अनन्य भक्त थे। वे भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराम, महादेव शिव, भगवती दुर्गा आदि सभी के प्रति भक्ति भाव रखते थे। वे मानते थे कि सभी अवतार एक ही प्रभु के विभिन्न रूप हैं। उनका कंठ अत्यंत सुरीला था। पहले वे अन्य साधु-संतों के रचे पद गाकर भक्ति का प्रचार किया करते थे, बाद में सरस्वती की उन पर ऐसी कृपा हुई कि रोज एक भक्ति गीत रचकर उसे तिरुपतिजी को सुनाने लगे।

कवि भक्त अन्नमाचार्य अपने प्रवचन में सदाचार पर बहुत जोर दिया करते थे। वे कहा करते थे, 'मानव शरीर बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। उसे सत्कर्मों और भक्ति में लगाना चाहिए। किसी की न निंदा करनी चाहिए और न

बेवजह प्रशंसा। भगवान् की आराधना में वाणी का उपयोग करना चाहिए।'

विजयनगर साम्राज्य के राजा सालुव नरसिंह राय ने एक बार उनका भक्ति गीत सुना, तो मंत्रमुग्ध हो उठे। वे उनके मित्र बन गए। मंत्री ने भक्त अन्नमाचार्य से एक बार अनुरोध किया कि वे यदि राजा की प्रशंसा में कुछ पद रच दें, तो राजा उन्हें कई गाँव इनाम में देंगे।

भक्त-कवि ने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया, 'मैं केवल भगवान् की प्रशंसा के पद रचता हूँ और उन्हीं की भक्ति के लिए गाता हूँ।'

अन्नमाचार्य ने अपने जीवन में 32 हजार पदों की रचना की। तिरुपति के वेंकटेश मंदिर के संकीर्तन भंडार में ताम्रपात्र पर लिखित उनके असंख्य पद सुरक्षित हैं।

●●●

164.

धर्म आचरण का विषय है

भगवान् बुद्ध शिष्यों सहित धर्म प्रचार करते हुए बिहार के एक गाँव में पहुँचे। अनेक स्त्री-पुरुष उनका सत्संग करने व उनके प्रवचन सुनने आए। प्रवचन के बाद बिंदास नामक एक जिज्ञासु ने तथागत से प्रश्न किया, 'प्रभु, सच्चा सुख कैसे मिलता है? क्या धार्मिक उपासना पद्धति से ही सुख व मोक्ष की प्राप्ति होती है?'

तथागत ने जवाब दिया, 'जो सत्य, अहिंसा और शील को अपनाता है और सदाचार पर अटल रहता है, उसी को सच्चा सुख मिलता है। सत्य का पालन करने वाले में ऐसी अनूठी शक्ति होती है कि लोग बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। जो अपने माता-पिता और वृद्धजनों की सेवा करता है और उन्हें संतुष्ट रखता है, उसे जो आत्मिक तृप्ति मिलती है, वह अन्य को मिलना दूभर है।'

उन्होंने आगे कहा—'कर्मकांड या पुरानी बातों के अंधानुकरण को धर्म नहीं कहते। धर्म का अर्थ है, कर्तव्य और सदाचार। यह दिखावे के लिए नहीं, आचरण की वस्तु है। जो व्यक्ति धर्मानुसार जीवन जीता है, वह इहलोक व परलोक, दोनों में आनंद प्राप्त करता है।' कुछ क्षण रुककर भगवान् बुद्ध ने कहा, 'आत्मसंयम, श्रद्धा, शील और सत्य पर दृढ़ रहते हुए तृष्णा और अहंकार से सर्वथा मुक्त हो जाने वाला व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी होता है। मोह-लालच ऐसे अवगुण हैं, जो मानव को जन्म-मृत्यु रूपी कीचड़ में फँसाए रखते हैं। अत: सबसे पहले तृष्णा, मोह और ममता से मुक्ति पाने का संकल्प लेना चाहिए।'

बिंदास यह सुनकर तथागत के चरणों में झुक गया।

●●●

165.

मोक्ष का अधिकारी

युधिष्ठिर प्राय: भीष्म पितामह के चरणों में बैठकर उनका सत्संग करने को लालायित रहते थे। वे उनके समक्ष अपनी जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कर उनका समाधान प्राप्त किया करते थे। एक बार उन्होंने प्रश्न किया कि गृहस्थ पुरुष के कल्याण का सूत्र बताने की कृपा करें।

भीष्म ने कहा, 'गृहस्थ पुरुष सत्य-सरलता का पालन करे। वृद्धजनों व अतिथि का आदर-सत्कार करे। भगवान् की भक्ति करे और अपनी स्त्री से ही अनुराग रखे, ऐसा आचरण करने वाले गृहस्थ के कल्याण में कोई संशय नहीं।'

सद्गृहस्थ जनकजी का उदाहरण देते हुए भीष्म पितामह ने कहा, 'जनक गृहस्थ रहते हुए भी भगवान् की भक्ति में हमेशा लीन रहते थे। उन्हें दु:ख-सुख का अंतर पता नहीं लगता था। ऐसा सद्गृहस्थ किसी संन्यासी से कम नहीं होता।'

युधिष्ठिर ने प्रश्न किया, 'पितामह, मोक्ष का अधिकारी कौन है?'

भीष्म ने समझाया, 'जो व्यक्ति लोभ, मोह जैसे दोषों का त्याग करता है, जिसके लिए मिट्टी और सोना समान है, जो आसक्तिरहित है, वह मोक्ष का अधिकारी होता है। गेरुआ वस्त्र धारण करना, कमंडल धारण करना—ये सभी संन्यास मार्ग का परिचय देने वाले चिह्न मात्र हैं। इनसे मोक्ष नहीं मिलता। काम, क्रोध, लोभ, भय आदि का त्याग करने वाले, पूर्ण संयमी संन्यासी और भगवान् की भक्ति व प्रेम में डूबे रहने वाले साधु को ही मुक्ति प्राप्त होती है।'

धर्मराज युधिष्ठिर को अपने प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर मिल गया।

●●●

166.

शील और गुणों का महत्त्व

आचार्य चाणक्य का संसार के अग्रणी नीतिवानों में स्थान है। वे मगध के सम्राट् चंद्रगुप्त को नीति ज्ञान कराकर उनका मार्गदर्शन किया करते थे। उन्होंने नीतिवचन में लिखा, 'जैसे चंदन वृक्ष काटे जाने पर भी अपनी सुगंध व शीतलता नहीं छोड़ता, कोल्हू में पेरे जाने पर भी ईख अपनी मधुरता का त्याग नहीं करता, इसी प्रकार मनुष्य को भी विपन्नता की स्थिति में अपने शील व गुणों का त्याग नहीं करना चाहिए।'

आचार्य चाणक्य सत्य और सदाचार का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं, 'यदि सत्यरूपी तपस्या से कोई व्यक्ति समृद्ध है, तो उसे अन्य तपस्या की क्या आवश्यकता? यदि उसका मन पवित्र है और वह सदाचार मार्ग का अवलोकन करता है, तो उसे तीर्थाटन की क्या आवश्यकता? यदि कोई उत्तम विद्या से युक्त है, तो उसे अन्य धन की क्या जरूरत?' आचार्य एक नीतिवचन में कहते हैं, 'यश ही मानव को अमर बनाता है। यशविहीन व्यक्ति तो जीते जी मर चुका होता है।'

वे आगे कहते हैं, 'बिना आगे-पीछे देखे खर्च करनेवाला, बात-बात पर निरर्थक झगड़ा करनेवाला और सभी कार्यों में आतुर व्यक्ति थोड़े समय तक ही जीवित रहता है। अन्याय से अर्जित संपत्ति केवल दस वर्ष तक ही ठहरती है। ग्यारहवें वर्ष में वह समूल नष्ट हो जाती है।'

एक जगह चाणक्य लिखते हैं, ‘विद्या, तप, दान, चरित्र, गुण एवं धर्म (कर्तव्य) से विहीन व्यक्ति पृथ्वी का भार है। वह मानव नहीं, पशु के समान है।’

●●●

167.

अन्नदान यज्ञ

दक्षिण भारत के संत रामलिंगम् स्वामी वल्ललार करुणा व प्रेम को भक्ति का मूल आधार बताया करते थे। एक बार कुछ धनाढ्य भक्त चावल, गेहूँ, शक्कर, घी आदि लेकर उनके पास पहुँचे और कहा, ‘महाराज, हम एक यज्ञ करने का संकल्प लेकर आए हैं। हम चाहते हैं कि यज्ञ में आहुति देने का शुभारंभ आप करें। यह यज्ञ आपके सान्निध्य में होना चाहिए।’

स्वामीजी ने कहा, ‘यज्ञ अवश्य होगा। कल सवेरे मैं ऐसा अनूठा यज्ञ कराऊँगा कि आप सब लोगों को प्रत्यक्ष देव-दर्शन होगा।’

स्वामीजी के आदेश से भोजन के लिए खीर, हलवा आदि व्यंजन तैयार किए गए।

स्वामीजी ने पास की झोंपड़पट्टी से सभी अभावग्रस्त लोगों को आमंत्रित किया। उन्हें पंक्ति में बिठाया और फिर सेठों से बोले, ‘इन सबको सम्मान के साथ सामूहिक भोजन कराओ। यह अनुभव करो कि तुम यज्ञ में आहुतियाँ दे रहे हो। ये सब अभावग्रस्त साक्षात् देवता बनकर आहुतियाँ ग्रहण कर रहे हैं।’

उन भक्तजनों ने यह स्वीकार किया कि वास्तव में इस अनूठे यज्ञ रूपी भंडारे से उन्हें जो संतोष मिला है, वह पहले कभी नहीं मिला था।

स्वामीजी ने भक्तजनों को उपदेश देते हुए कहा, ‘जब किसी भूखे-असहाय व्यक्ति को भोजन देकर उसकी भूख तृप्त की जाती है, उस समय उसके अंत:करण से निकला कृतज्ञता का भाव भगवान् का आशीर्वाद होता है। मैं इसे ‘जीव कारुण्य-आराधना’ मानता हूँ।’

स्वामी रामलिंगम् के अनुयायी अब भी अन्नदान यज्ञ कर उस परंपरा का निर्वाह करते हैं।

●●●

168.

कर्म ही तप है

सप्तद्वीप नवखंड पर कई दशकों तक राज्य करने वाले राजराजेश्वर वैभवपूर्ण जीवन जीने के बाद अपने अल्पायु पुत्र को सत्ता सौंपकर वन में चले गए। वहाँ वे घोर तपस्या में लीन हो गए। वे केवल एक समय फलाहार करते।

वर्षों तक साधना करने पर भी उन्हें आत्मिक शांति प्राप्त नहीं हुई। उन्हें समाचार मिलते रहते थे कि उनके चले आने के कारण प्रजा बहुत परेशान है। सेवकगण प्रजा का उत्पीड़न करते हैं।

एक दिन राजराजेश्वर को खाने के लिए फल नहीं मिला। वे भोजन की तलाश में निकल पड़े। एक खलिहान केपास से जब वे गुजर रहे थे, तो खेत में श्रम करते एक किसान की दृष्टि उन पर पड़ी। किसान ने उन्हें प्रणाम किया और बोला, 'पास आओ बाबा! किस वस्तु की तलाश में हो?'

उसे जवाब मिला, 'भूख से व्याकुल हूँ।'

किसान ने कहा, 'मेरे पास दाल-चावल हैं। झोंपड़ी में चूल्हा है। खिचड़ी पकाओ। दोनों खाकर भूख मिटाएँगे।'

राजराजेश्वर ने खिचड़ी पकाई। दोनों ने भरपेट भोजन किया और फिर वृक्ष की छाया में लेट गए। पहली बार उन्हें गहरी नींद आई। सपने में उन्होंने देखा कि एक विराट् पुरुष उनसे कह रहा है, 'राजन्, मैं कर्म हूँ। इस सृष्टि का परम तत्त्व। तुम प्रजा का हित साधन करते हुए जो उच्च स्थिति प्राप्त कर सकते थे, वह वन में तपस्या से नहीं कर सके। अपने कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करना ही सबसे बड़ा तप है।'

राजराजेश्वर का विवेक जाग उठा। वे वापस लौट आए और प्रजा के हित साधन में लग गए।

●●●

169.

विशालहृदयता

राजा उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सुरुचि से काफी प्रेम करते थे। एक दिन बड़ी रानी सुनीति का पाँच वर्षीय पुत्र ध्रुव पिता की गोद में आ बैठा। सुरुचि ने अहंकार से ग्रस्त होकर बालक को गोद से उतारते हुए कहा, 'यदि पिता की गोद या सिंहासन चाहिए, तो भगवान् की आराधना करो और मेरे पुत्र के रूप में जन्म लो।'

इस अपमानजनक व्यवहार से क्षुब्ध होकर ध्रुव अपनी माँ के पास पहुँचा। सुनीति ने अपने पुत्र के क्रोध को शांत करते हुए कहा, 'विमाता ने ठीक ही तो कहा है। भगवान् की भक्ति से ही किसी को श्रेष्ठ पद की प्राप्ति हो सकती है और भक्ति के लिए वैर व घृणा की भावना से मुक्त होना जरूरी है।'

पाँच वर्षीय ध्रुव वन की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसे देवर्षि नारद मिले। नारदजी ने पहले तो उसे समझाकर घर लौटने को कहा, किंतु भक्ति व तपस्या के लिए अटल ध्रुव को उन्होंने द्वादशाक्षर की दीक्षा देकर मथुरा क्षेत्र में यमुना तट पर तपस्या करने को कहा।

ध्रुव ने भूखा-प्यासा रहकर कठोर तप किया। एक अल्पायु बालक की श्रद्धा-भक्ति और कठोर तप ने भगवान् को व्याकुल कर दिया। भगवान् ने प्रकट होकर दर्शन दिए-आर्शीवाद दिया। ध्रुव घर वापस पहुँचे। अपनी विमाता के चरण स्पर्श कर बोले, 'यदि आप उस दिन मुझे प्रेरणा नहीं देतीं, तो मैं भगवान् की कृपा प्राप्त करने को उद्यत नहीं होता।'

सुरुचि उसकी विनम्रता को देखकर हतप्रभ थी। उसने भक्त ध्रुव को गोद में बिठाकर धन्यता का एहसास किया।

●●●

170.

दान की महिमा

राजा भोज धर्मशास्त्रों के अनुसार जीवन बिताने का प्रयास करते थे। वे इतने बड़े दानी थे कि कोई भी उनके घर से कभी खाली हाथ नहीं लौटता था। राज्य का दीवान राजा की इस प्रवृत्ति से चिंता में पड़ गया। उसे लगा कि यदि राजा इसी प्रकार दान देते रहे, तो एक दिन राज्य का खजाना खाली हो जाएगा। दीवान ने एक दिन राजा भोज के भोजन कक्ष की दीवार पर सूक्ति 'आपदर्थे धनं रक्षेत्' अर्थात् आपातकाल के लिए धन को संभालकर रखना चाहिए —लिख दी। राजा भोजन करने आए, तो दीवार पर लिखी सूक्ति पढ़कर समझ गए कि दीवान ने सीख देने के लिए इसे लिखा है। उन्होंने उसके नीचे लिख दिया, 'श्रीमतां कुत आपदा।' अर्थात् सक्षम लोगों पर आपदा कहाँ आती है।

अगले दिन दीवान ने राजा की लिखी सूक्ति पढ़ी। उन्होंने नीचे लिख दिया, 'देवात क्वचित समायाति' अर्थात् यदि दैवयोग से विपत्ति आ जाए तो...।

राजा ने जब यह सूक्ति पढ़ी, तो उन्होंने उसके बीच लिखा, 'संचितो अपि विनश्यति' अर्थात् ऐसा भी समय आता है, जब संचित संपत्ति नष्ट हो जाती है।

राजा ने दीवान से मिलने पर कहा, 'तुम्हारी राज्य के हित में चिंता अपनी जगह ठीक है, किंतु मैं धर्मशास्त्रों के अध्ययन से इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि लक्ष्मी को चंचला कहा गया है। उस धन-संपत्ति की ही सार्थकता है, जिसका उपयोग गरीबों-असहायों की सेवा के लिए किया जाता है। इसलिए भविष्य की चिंता छोड़कर इसका सद्कर्मों में निरंतर उपयोग करना चाहिए।'

●●●

171.

ज्ञान और भक्ति की साधना

एक बार पंचवटी स्थित आश्रम में भगवान् श्रीराम लक्ष्मणजी के साथ बैठे थे। लक्ष्मण ने सरल भाव से कुछ जिज्ञासाएँ उनके समक्ष रखीं। उन्होंने पूछा, 'प्रभु, माया किसे कहते हैं?'

श्रीराम ने बताया, 'यह मैं हूँ और यह मेरा है, वह तू है और वह तेरा है—बस यही माया है, जिसने समस्त जीवों को अपने वश में कर रखा है।' उन्होंने आगे कहा, 'माया दो प्रकार की होती है। एक विद्या माया है, जो जीव को गुणों को ग्रहण करने तथा ईश्वर प्राप्ति की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देती है। दूसरी दोषयुक्त अविद्या माया है, जिसके वश में होकर जीव संसार रूपी कुएँ में पड़कर अनेक दु:ख भोगता है।'

श्रीराम ने अपने अनुज को समझाते हुए कहा, 'हे तात, ज्ञानी वह है, जिसमें मान, अभिमान आदि एक भी दोष नहीं है और जो सबमें समान रूप से ब्रह्म को ही देखता है। परम विरागी उसी को कहा जाता है, जो सारी सांसारिकसुविधाओं को त्याग चुका हो। वेदों में ऐसा वर्णन है कि धर्म के आचरण से वैराग्य और योग के माध्यम

से ज्ञान प्राप्त होता है। यही मोक्ष देने वाला होता है। भक्ति अनुपम सुख की मूल है। भक्ति को ज्ञान-विज्ञान आदि किसी दूसरे साधन के सहारे की आवश्यकता नहीं होती। वह भक्ति तभी मिलती है, जब संतजन प्रसन्न होते हैं। जिस भक्त में काम, मद तथा दंभ आदि दोष न हों, जो संतों, गुरु, माता, वृद्धजनों और विद्वानों की सेवा में तत्पर रहता है, उसे सहज ही भक्ति-साधना में सफलता मिलती है।'

श्रीरामजी के विवेचन से लक्ष्मण गद्गद हो उठे।

●●●

172.

मैं तो शहंशाह हूँ

राजस्थान में जन्मे महात्मा मस्तराम परम विरक्त संत थे। वे अपने पास एक कमंडल तथा एक लंगोटी के अलावा कुछ नहीं रखते थे। मारवाड़ से धर्म प्रचार करते हुए एक दिन वे काठियावाड़ पहुँचे। उन्हें पता चला कि इस क्षेत्र के ग्रामीण नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं और आलसी हैं। उन्होंने ग्रामीणों को उपदेश देते हुए शराब, अफीम, तंबाकू आदि से होने वाली हानि से अवगत कराया। आलस्य त्यागकर कर्म करने और प्रतिदिन भगवान् का स्मरण करने की प्रेरणा दी।

भावनगर के राजा भी उनके दर्शन के लिए पहुँचे और उन्हें दोशाला ओढ़ा दिया।

संतजी ने राजा से कहा, 'इस दोशाला को किसी जरूरतमंद गरीब को दे देना। मुझ साधु की तपस्या भंग न करो।'

एक दिन काठियावाड़ के एक सेठ ने महात्माजी के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्हें धन से भरी थैली भेंट की।

स्वामीजी ने कहा, 'यह थैली किसी गरीब को दे देना।'

सेठ ने हँसकर कहा, 'महाराज, आपके पास एक लंगोटी के अलावा कुछ नहीं है। मैं दूसरा गरीब कहाँ से ढूँढ़ूँगा?'

महात्माजी ने कहा, 'चाह नहीं चिंता नहीं मनवा बेपरवाह, जा को कुछ न चाहिए, सो जग शहंशाह। मैं गरीब नहीं, मैं तो शहंशाह हूँ।'

अचानक भावनगर के राजा भी वहाँ आ पहुँचे। महात्माजी ने हँसकर कहा, 'सेठ, यह थैली राजा को दे दो। इनके पास अथाह संपत्ति है, फिर भी इन्हें संतोष नहीं। जिसे संतोष नहीं, वह तो दरिद्र ही होता है ना।'

राजा महात्माजी के चरणों में झुक गए।

●●●

173.

मृत्यु का जश्न

रोम का सम्राट् किसी बात पर अपने मंत्री से क्षुब्ध हो उठा। उसे लगा कि मंत्री भगवान् को मुझसे बड़ा मानकर मेरा निरादर कर रहा है। राजा के मन में ईर्ष्या की भावना इतनी प्रबल हो उठी कि उसने निर्णय लिया कि जब मंत्री अपने परिवार के साथ अपना जन्मदिन मनाएगा, उसी दिन उसे फाँसी दे दी जाएगी।

मंत्री के जन्मदिवस पर भजन-संगीत और भोज का आयोजन था। तमाम रिश्तेदार व मित्र उपस्थित थे। उसी समय राजा के दूत ने एक लिखित आदेश मंत्री को थमा दिया। उसमें लिखा था, 'आज शाम छह बजे मंत्री को फाँसी दी जाएगी।' यह आदेश पढ़ते ही मंत्री के कुटुंबी और मित्र हतप्रभ रह गए। पत्नी और बेटे रोने लगे, किंतु मंत्री उठा और मस्ती में भगवान् का स्मरण कर नाचने लगा।

दूत यह देखकर दंग रह गया। उसने राजा को बताया कि फाँसी का आदेश मिलने पर भी मंत्री मायूस न होकर खुशी-खुशी नाच रहा है। राजा भी वहाँ पहुँचा। उसने मंत्री से पूछा, 'क्या तुम्हें नहीं पता कि कुछ घंटे बाद तुम्हें फाँसी पर लटका दिया जाएगा?'

मंत्री ने कहा, 'राजन्, मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ। मैं आज के दिन ही जन्मा था। आपकी कृपा से आज ही इस नश्वर शरीर को छोड़ प्रभु में विलीन हो जाऊँगा। आज तमाम रिश्तेदार-मित्र यहाँ मौजूद हैं। मेरी मृत्यु को आनंद महोत्सव में बदलकर आपने मुझ पर एक बड़ा एहसान किया है।'

राजा ने कहा, 'तुमने तो मृत्यु को जीत लिया है। जिसे मृत्यु का भय नहीं सताए, वही तो जीवित है।' राजा ने मंत्री की फाँसी की सजा टाल दी।

●●●

174.

भूखे की भाषा

बौद्ध साधक हुआंग पो एकांत में साधना किया करते थे। कई बार भिक्षा माँगने गाँव न जा पाते, तो धरती खोदकर कंद-मूल निकाल लेते और उससे ही अपनी क्षुधा मिटाते।

एक दिन भूख से व्याकुल संत हुआंग कंद की तलाश में जंगल पहुँचे।

अचानक किसी ने पूछा, 'संत हुआंग पो का आश्रम कितनी दूर है? क्या मुझे वहाँ तक पहुँचा सकते हैं?'

संत के मुख से निकला, 'क्या करोगे उस भूखे भिखारी व पागल से मिलकर। कहीं भूख मिटाने की जुगाड़ में लगा होगा वह।'

अजनबी ने कहा, 'आप ऐसे महान् संत को पागल कहते हैं। मैं उनके दर्शन को लालायित हूँ।'

संत ने जवाब दिया, 'कुछ देर बैठो। पहले मैं अपना काम पूरा कर लूँ, फिर तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा।'

कंद मिलते ही संत उसे लेकर कुटिया तक गए। उसे ठंडा पानी पिलाया और बोले, 'कुछ देर प्रतीक्षा करो। संत से मिलने का अवसर मिलेगा।'

कंद खाने के बाद तृप्त होकर हुआंग पो कुटिया में लौटे और आगंतुक से विनम्रता से बोले, 'अब बताओ, क्या चाहते हो मुझसे?'

आगंतुक चकित हो उठा कि रूखा व्यवहार करनेवाला व्यक्ति ही संत हुआंग पो हैं। उसने पूछा, 'उस समय आपकी वाणी में रूखापन था—अब विनम्रता। यह अंतर क्यों?'

संत ने कहा, 'वह भूख से व्याकुल भिक्षुक की भाषा थी और अब यह तृप्त ज्ञानी की वाणी है।' संत ने उसे उपदेश देते हुए कहा, 'भूखे-प्यासे को तृप्त करना ही सबसे बड़ा धर्म है। भूख से व्याकुल व्यक्ति वाणी का संयम खो बैठता है। इसके तुम प्रत्यक्षदर्शी हो।'

●●●

175.

अनूठी ईमानदारी

श्रीलंका के सीलोन नगर में महता शैसा नामक व्यक्ति रहता था। वह परम ईश्वरभक्त और ईमानदार था। वह सदाचार पर अडिग रहता था। वह धर्मशास्त्रों का वाक्य दोहराया करता था कि बिना परिश्रम के प्राप्त हुआ धन विष का काम करता है। वह पहले जड़ी-बूटियों का बड़ा थोक व्यापारी था, लेकिन अब वह स्वयं जंगलों से जड़ी-बूटियाँ लाता और उन्हें बेचकर दिन गुजारता था।

उसका एक मित्र था लरोटा। वह भी पहले काफी धनी था और उसके बाग-बगीचे थे, लेकिन इन दिनों गरीबी के दिन बिता रहा था। एक दिन महता शैसा लरोटा के बगीचे में जमीन खोदकर जड़ी-बूटी तलाश रहा था कि अचानक उसे एक घड़ा दिखाई दिया। उसमें सोने की अशर्फियाँ भरी हुई थीं। शैसा ने अशर्फियाँ देखीं, किंतु उसके अंदर की सच्चाई ने लालच को पास भी फटकने नहीं दिया। उसने घड़े को मिट्टी में ही दबा दिया और लरोटा के पास पहुँचकर सूचना दी कि बगीचे में अशर्फियों से भरा घड़ा है। लरोटा बगीचे में पहुँचा। अशर्फियाँ देखकर उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने शैसा को कुछ अशर्फियाँ इनाम में देने की कोशिश की, तो उसने यह कहकर अशर्फियाँ ठुकरा दीं कि दूसरे का धन विष के समान घातक होता है।

लरोटा ने बगीचे की और खुदाई करवाई, तो उसे अशर्फियों से भरे कई घड़े मिले। शैसा की ईमानदारी से प्रभावित होकर उसने अपनी बहन का विवाह उससे कर दिया। शैसा ने विवाह में भी दहेज नहीं लिया और परिश्रम कर दिन बिताता रहा।

●●●

176.

भिक्षु का उपदेश

एक बार बौद्‍ध भिक्षु बोधिधर्म धर्म का प्रचार करने चीन गए। चीन का सम्राट् बौद्‍ध था। उसे बोधिधर्म के विद्‍वत्तापूर्ण उपदेशों ने बहुत प्रभावित किया। एक दिन सम्राट् ने बोधिजी को अपने महल में आमंत्रित किया। उसने

उनसे पूछा, 'संतप्रवर, मैं भगवान् बुद्‌ध के बताए मार्ग पर चलने का प्रयास करता हूँ, फिर भी मुझ पर क्रोध हावी हो जाता है और मेरा मन अशांत रहता है। क्रोध से बचने के लिए क्या करना चाहिए?'

भिक्षु बोधिधर्म ने कहा, 'अपनी आँखें बंद करो और ध्यान एकाग्र करो, तुम्हें क्रोध नहीं आएगा।'

कुछ क्षण रुककर बौद्‌ध भिक्षु ने कहा, 'जो दुर्गुण मानव पर सदा हावी नहीं रहते, उन्हें अभ्यास करके छोड़ा जा सकता है, लेकिन जो व्यक्ति लोभ, लालसा और मोह में अंधा बनकर हर समय भोग-विलास और संग्रह के चिंतन में लगा रहता है, उसमें सुधार की गुंजाइश नहीं होती।'

सम्राट् को उपदेश देते हुए उन्होंने आगे कहा, 'अपना व्यक्तिगत जीवन और ज्यादा सरल व सात्त्विक बनाओ। सुख से ज्यादा सुखी न होने तथा दु:ख से ज्यादा परेशान न होने का अभ्यास करते-करते तुम क्रोध, लालच आदि दुर्गुणों से स्वत: मुक्ति पा जाओगे। शरीर की जगह आत्मा को महत्त्व देने वाला व्यक्ति कभी दु:खी व अशांत नहीं रह सकता।'

सम्राट् ने उसी दिन से अपने जीवन को और सरल, सात्त्विक व पवित्र बनाने का अभ्यास शुरू कर दिया।

177.

भगीरथ की अनूठी विरक्ति

राजा भगीरथ सांसारिक सुखों व राजकीय ऐश्वर्य से ऊब गए। वे अपने गुरुदेव महात्मा त्रितल की शरण में पहुँचे और उन्हें अपने हृदय की वेदना बताई। महात्मा त्रितल ने कहा, 'राजन्, किसी भी प्रकार के सांसारिक आकर्षण, लालसा या अहंकार से मुक्त होने के बाद ही इस वेदना से मुक्ति मिल सकेगी।'

राजा भगीरथ ने अपनी सभी संपत्ति लुटा दी और अपना राज्य शत्रु के हवाले कर वन में जाकर तपस्या करने लगे। कुछ दिनों बाद वे भिक्षा लेने राजधानी पहुँचे। जो कभी उनका शत्रु था, उस राजा के महल के द्‌वार पर पहुँचकर भिक्षा की अलख जगाई।

राजा और मंत्री तुरंत उनके सामने पहुँचे। राजा ने अत्यंत आदर से भिक्षा दी। उनकी विनम्रता एवं विरक्ति की भावना से अभिभूत होकर शत्रु राजा ने प्रार्थना की, 'आप अपना राज्य वापस ले लें।'

तपस्वी भगीरथ ने कहा, 'मैं भगवान् की कृपा से आनंद में सराबोर होकर पूर्ण संतुष्ट हूँ।'

भगीरथ एक बार दूसरे राज्य में पहुँचे। अचानक उस राज्य के संतानविहीन राजा की मृत्यु हो गई। प्रजा राजा के न रहने से कष्ट में जीवन बिताने लगी। एक दिन भगवान् ने स्वप्न में भगीरथ से कहा, 'भगीरथ, तुम विरक्ति की चरम स्थिति में पहुँच चुके हो। इस समय प्रजा का कल्याण करना ही तुम्हारा धर्म है।'

मंत्रियों के अनुरोध पर वे पुन: राजा बने, लेकिन कुछ ही वर्ष बाद उन्होंने राज्य त्याग दिया। घोर तपस्या कर पृथ्वी का उद्‌धार करने के उद्‌देश्य से उन्होंने गंगा को भूमंडल पर प्रवाहित कराया तथा अमर हो गए।

●●●

178.

कर्मफल भोगना पड़ता है

अपने पुत्र श्रीराम को राज्याभिषेक की जगह चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा देने की विवशता से दु:खी दशरथजी अत्यंत पीड़ा का अनुभव कर रहे थे। हर क्षण उनके मुख से 'राम-राम' निकल रहा था।

कौशल्याजी के पास बैठे-बैठे वे बोले, 'मुझे राम के दर्शन कराओ।' उन्होंने आगे कहा, 'जिसका अगले दिन राज्याभिषेक हो, उसे वनवास की आज्ञा मिले, फिर भी उसके चेहरे पर आक्रोश नहीं—भला ऐसा आज्ञाकारी पुत्र राम के अलावा कौन हो सकता है?' कुछ क्षण रुककर उन्होंने कहा, 'भरत का राज्याभिषेक करने के बाद उससे कहना कि रघुवंश की संस्कृति, भ्रातृभाव न टूटने पाए। राम रघुवंश के मणि हैं। वनवास पूरा करने के बाद उस मणि को राज सिंहासन पर आसीन करने में ही हमारे कुल का गौरव है।'

अचानक उन्होंने कहा, 'तीनों वनवास से वापस आ जाएँ, तो कहना कि तुम्हारे पिता ने तुम्हारा नाम लेते-लेते प्राण त्याग दिए।' फिर उन्होंने कौशल्या से कहा, 'क्या सामने की दीवार में कुछ दिखाई देता है?'

कौशल्या, सुमित्रा और सुमंत ने कहा, 'हमें तो केवल दीवार दिखाई दे रही है।'

दशरथ ने कहा, 'श्रवण कुमार के गरीब माँ-बाप ने मुझे शाप दिया था कि जिस प्रकार हम पुत्र वियोग का दु:ख भोग रहे हैं, उसी प्रकार तुम्हारी मौत पुत्र वियोग में होगी। चार पुत्रों में से कोई भी तुम्हारे मुँह में पानी डालने वाला न होगा। कौशल्या! कर्म भोगे बिना कोई चारा नहीं...।' कहते-कहते दशरथजी की आँखों से आँसू बहने लगे।

●●●

179.

एकता का सूत्र है सहनशीलता

जापान के राजा यामोता धर्मात्मा तथा उदार हृदय के शासक थे। वे प्रजाजनों के सुख-दु:ख में हमेशा सहभागी बनने का प्रयास करते थे। उनका मंत्री ओचोआन भी परम संयमी व संतोषी था। एक बार राजा यामोता को पता चला कि मंत्री के दादा के सभी भाइयों की संतानें एक साथ प्रेमपूर्वक रहती हैं। इन दिनों मंत्री परिवार के मुखिया का दायित्व निभा रहे हैं। इस विशाल परिवार में कभी किसी बात को लेकर विवाद नहीं होता। राजा इस वयोवृद्ध मंत्री का बहुत आदर करते थे। वे मंत्री की सरलता, सात्त्विकता व कर्तव्यपरायणता से प्रभावित थे।

एक दिन उन्होंने सोचा, इस आदर्श परिवार की एकता व सौहार्द्र का रहस्य जानना चाहिए। वे अचानक मंत्री के घर जा पहुँचे। मंत्री ने राजा का विनम्रता से स्वागत किया। अपने भाइयों, पुत्र-पौत्रों, बहनों-बेटियों व बहुओं से उनका परिचय कराया। राजा ने स्वयं देखा कि परिवार के कई सौ सदस्यों में अनूठा प्रेम झलक रहा है। सभी के चेहरों पर संतोष था।

राजा ने विनम्रता से पूछा, 'मैं यह जानना चाहता हूँ कि इतने विशाल परिवार में ऐसा अनूठा प्रेम-सौहार्द्र बनाए

रखने का आपका मूल मंत्र क्या है?'

मंत्री ने कहा, 'राजन्, संतोष और सहनशीलता ऐसे अनूठे सूत्र हैं, जो विशाल परिवार को एक साथ रखने में सामर्थ होते हैं। धर्म ने हमें सादगी, सरलता और संतोष का जीवन जीने की प्रेरणा दी है। सहनशीलता राग-द्वेष व कलह को पास नहीं फटकने देती।'

मंत्री के इन गुणों के समक्ष राजा नतमस्तक हो उठे।

●●●

180.

सत्य और मधुर बोलो

धर्मशास्त्रों में वाणी संयम को श्रेष्ठ तप बताया गया है। धर्माचार्यों और संत-महात्माओं ने भी सदैव सत्य और मृदु वचन बोलने की प्रेरणा दी है। उपनिषदों में कहा गया है, *तत् सत्ये प्रतिष्ठितम्* यानी ब्रह्म सदा सत्य से प्रतिष्ठित होता है। सत्य पर अटल रहने, वाणी से मृदु, प्रेमभरे वचन उच्चारित करने से मानव सभी को मित्र-हितैषी बनाने में सफल होता है। मनु ने कहा है—

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यम प्रियम्,
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

यानी सत्य बोलें, प्रिय बोलें, अप्रिय सत्य न बोलें, प्रिय बोलने में भी असत्य न बोलें—यही शाश्वत धर्म है। वेदों में लिखा है, *जिह्वाया अग्रे मधु मे*—अर्थात् मेरी जिह्वा के अग्रभाग पर माधुर्य हो। मैं वाणी से मधुर बोलूँ।

गोस्वामी तुलसीदास तो मीठे वचनों को वशीकरण मंत्र बताते हुए कहते हैं—

'तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँओर,
वशीकरण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥'

आवेश में कठोर वचन बोलकर मनुष्य न केवल दूसरे के हृदय को दुःख पहुँचाने के पाप का भागी बनता है, अपितु पग-पग पर शत्रु पैदा कर लेता है। वाणी से निकले कटु वचन का घाव कभी नहीं भरता। इसलिए संत कबीरदास ने कहा—

'ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय॥'

इसीलिए सभी विभूतियों ने वाणी के संयम और मधुरता पर बहुत बल दिया है।

●●●

181.

मित्र के लक्षण

वनवास के दौरान भगवान् श्रीराम सीताजी की खोज करते समय सुग्रीव के संपर्क में आए थे। सुग्रीव अपने अधर्मी बड़े भाई बालि के आतंक से पीड़ित थे। बालि ने उनकी पत्नी का अपहरण कर धर्म-मर्यादा को तार-तार किया था। श्रीराम ने अत्याचारी बालि का वध कर सुग्रीव को राजा बनवाया।

एक दिन सुग्रीव श्रीराम के सत्संग के लिए पहुँचे। श्रीराम ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा, 'मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र शूल के समान हर समय पीड़ा देने वाले होते हैं। अत: इनसे विमुख रहने में भलाई है। जो मित्र सामने कोमल और मधुर वचन कहता है और पीठ पीछे बुरा करता है, साथ ही मन में कुटिलता रखता है, ऐसे कुमित्र को त्यागने में ही भलाई है।'

वे आगे कहते हैं, 'एक सच्चे मित्र का धर्म यह है कि वह अपने दु:ख को भूलकर मित्र का दु:ख दूर करने में पूर्ण सहयोग दे। मित्र का धर्म है कि वह मित्र को कुसंग से बचाकर अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। विपत्ति के समय जो काम नहीं आता, उसे मित्र नहीं मानना चाहिए।'

श्रीराम घर-परिवार की महिलाओं को एक समान समझने और उन्हें सम्मान देने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

'***अनुज बधू, भगिनी, सुत नारी।***
सुनु सठ, कन्या सम ए चारी॥

अर्थात् छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्रवधु और कन्या—इन चारों को एक समान समझना चाहिए।'

श्रीराम के प्रेरक उपदेश सुनकर सुग्रीव उनके चरणों में झुक गए।

●●●

182.

स्वर्ग का भोग नहीं चाहिए

महर्षि मुद्गल परम विरक्त, घोर तपस्वी तथा सेवा भावी थे। वे धर्मशास्त्रों के स्वाध्याय और भगवद्भजन में लगे रहते थे। खेतों में छोड़े गए अनाज को इकट्ठा कर उनसे अपनी भूख मिटाते थे। वे कई-कई दिनों के उपवास के अभ्यस्त थे।

एक बार की बात है—उपवास के अगले दिन वे व्रत पारण करने वाले थे कि अचानक एक दीन-हीन व्यक्ति आ पहुँचा। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'मैं भूख से व्याकुल हूँ। कुछ खाने को देने की कृपा करें।'

महर्षि ने अपने लिए बनाई रोटियाँ अतिथि के सामने परोस दीं। वह तृप्त होकर लौट गया। उन्होंने दोबारा रोटियाँ सेंकीं और भगवान् को भोग लगाने के बाद जैसे ही खाने के लिए बैठे कि एक अन्य भूखा व्यक्ति आ पहुँचा। उन्होंने अपना भोजन खुशी-खुशी उसे भेंट कर दिया। यह क्रम कई बार दोहराया गया। हर बार उन्होंने स्वयं भूखा रहकर अतिथि को भोजन कराया।

अचानक सामने देवदूत प्रकट हुआ। उसने कहा, 'अनूठे अतिथि सत्कार के पुण्यों के कारण आपको स्वर्गलोक ले जाने आया हूँ।'

महर्षि ने देवदूत से पूछा, 'स्वर्गलोक और पृथ्वीलोक में क्या अंतर है?'

उसने जवाब दिया, 'स्वर्गलोक भोग भूमि है, जबकि पृथ्वीलोक कर्मक्षेत्र। यहाँ कर्म द्वारा ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान और भक्ति के बल पर स्वाभाविक रूप से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।'

महर्षि मुद्गल ने अत्यंत आदरपूर्वक देवदूत को वापस लौटाते हुए कहा, 'मुझे स्वर्ग भोग की कोई आकांक्षा नहीं। मैं पृथ्वीलोक में रहकर ही साधना भक्ति करता रहूँगा।'

●●●

183.

सच्चा धर्मात्मा

राजा धर्मदेव हर समय प्रजा के कल्याण के लिए तत्पर रहा करते थे। पड़ोसी राजा की मृत्यु के बाद नियमानुसार उसका बड़ा बेटा राजा बना, जो अयोग्य था। उसकी अक्षमता देखकर राजा धर्मदेव सोचने लगे कि वे अपने तीनों पुत्रों में से जो पारखी और सक्षम होगा, उसे ही उत्तराधिकारी घोषित करेंगे।

राजा ने तीनों पुत्रों की योग्यता परखने का निश्चय किया। उन्होंने तीनों को किसी सच्चे धर्मात्मा को खोजकर लाने को कहा। बड़ा पुत्र एक सेठ को साथ लेकर लौटा। उसने बताया, 'यह खुलकर दान देते हैं। इन्होंने अनेक मंदिर बनवाए हैं।'

राजा ने सेठ को ससम्मान विदा कर दिया।

दूसरा पुत्र एक तिलकधारी ब्राह्मण को साथ लेकर लौटा। उसने बताया, 'पंडितजी वेद-शास्त्रों के परम ज्ञाता हैं। खूब व्रत-उपवास रखते हैं।'

राजा ने पंडितजी को भी ससम्मान विदा कर दिया।

तीसरा पुत्र एक सीधे-से दिखने वाले व्यक्ति को लेकर लौटा। उसने बताया, 'यह व्यक्ति सड़क पर घायल पड़े एक वृद्ध को हवा कर रहा था। होश आने पर इसने अपनी झोंपड़ी से दूध लाकर उसे पिलाया। मैंने जब इससे पूछा कि क्यों ऐसा कर रहे हो, तो इसने बताया कि बीमार व घायल की सेवा करना इसका धर्म है।'

राजा ने उस व्यक्ति से पूछा, 'क्या तुम धर्म-कर्म करते हो?' उसने जवाब दिया, 'महाराज, मैं अनपढ़ किसान हूँ। मेरी माँ बताया करती थी कि सेवा-सहायता से बड़ा कोई दूसरा धर्म नहीं है।'

राजा समझ गए कि तीसरा पुत्र ही योग्य व पारखी है। उन्होंने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

●●●

184.

जीवन सफल बनाओ

आदि शंकराचार्य अनूठी प्रतिभासंपन्न आध्यात्मिक विभूति थे। उन्होंने उपनिषदों का भाष्य किया और अनेक

प्रेरणादायक पुस्तकों की रचना की। देशभर में भ्रमणकर वे अपने उपदेशों से लोगों को मानव जीवन सफल बनाने की प्रेरणा दिया करते थे। हिमालय यात्रा के दौरान एक निराश गृहस्थ ने उनसे पूछा, 'सांसारिक दु:खों के कारण मैं आत्महत्या कर लेना चाहता हूँ।'

श्री शंकराचार्य ने कहा, 'यह मानव जीवन असीम पुण्यों के कारण मिलता है। निराश होने के बजाय केवल अपनी दृष्टि बदल दो, दु:ख व निराशा से मुक्ति मिल जाएगी।'

उन्होंने आगे बताया, 'कामनाएँ अशांति का मुख्य कारण हैं। कामनाओं को छोड़ते ही अधिकांश समस्याएँ स्वत: हल हो जाएँगी। धर्मानुसार संयमित व सात्त्विक जीवन बितानेवाला कभी दु:खी नहीं हो सकता।'

साधनपंचकम् में उन्होंने लिखा भी है, '*शांत्यादि परिचीयताम्*यानी सहनशीलता और शांति ऐसे गुण हैं, जो अनेक दु:खों से दूर रखते हैं। इसके साथ ही गर्व व अहंकार का सदा परित्याग करना चाहिए। धन से कई बातों का भले ही समाधान होता है, किंतु उससे शांति की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।'

उन्होंने यह भी कहा है कि काल किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। इसलिए वृद्धावस्था में जीने की आशा रखना, भगवत भजन में मन न लगाना, सांसारिक प्रपंचों में फँसे रहना मूढ़ता का ही परिचायक है। ज्ञानी और विवेकी वह है, जो भगवान् की भक्ति में लगा रहता है।

●●●

185.

साधु सोई जानिए

संत कबीरदास धर्म के नाम पर पाखंड करनेवालों से बचकर रहने की प्रेरणा दिया करते थे। काशी के गंगातट पर वे किसी साधुवेशधारी को नशा करते या अमर्यादित आचरण करते देखते, तो उसे इन पाप कर्मों से बचने का सुझाव देते।

एक बार किसी श्रद्धालु ने कबीर से पूछा, 'साधु के लक्षण क्या होते हैं?' उन्होंने तपाक से कहा—

'साधु सोई जानिए, चले साधु की चाल।
परमारथ राता रहै, बोलै वचन रसाल॥'

यानी संत उसी को जानो, जिसका आचरण संत की तरह शुद्ध है, जो परोपकार-परमार्थ में लगा हो और सबसे मीठे वचन बोलता हो।

कबीरदास ने अपनी साखी में लिखा, 'संत उन्हीं को जानो, जिन्होंने आशा, मोह, माया, मान, हर्ष, शोक और परनिंदा का त्याग कर दिया हो। सच्चे संतजन अपने मान-अपमान पर ध्यान नहीं देते। दूसरे से प्रेम करते हैं और उनका आदरकरते हैं।' उनका मानना था कि यदि साधु एक जगह ही रहने लगेगा, तो वह मोह-माया से नहीं बच सकता। इसलिए उन्होंने लिखा,

'बहता पानी निरमला-बंदा गंदा होय।
साधुजन रमता भला-दाग न लागै कोय।'

संत कबीरदास जानते थे कि ऐसा समय आएगा, जब सच्चे संतों की बात न मानकर लोग दुर्व्यसनियों की पूजा

करेंगे। इसलिए उन्होंने लिखा था—

'यह कलियुग आयो अबै, साधु न मानै कोय।
कामी, क्रोधी, मसखरा, तिनकी पूजा होय।'

आज कबीर की वाणी सच्ची साबित हो रही है तथा संत वेशधारी अनेक बाबा घृणित आरोपों में घिरे हैं।

●●●

186.

अनूठी औषधि

एक सद्‌गृहस्थ सेठ तीर्थयात्रा के लिए रवाना हुए। उनके अत्यंत करीबी मित्र ने उनसे कहा, 'भैया, तुम्हें जगह-जगह संत-महात्मा मिलेंगे। जो संत स्वयं शांत व संतुष्ट दिखाई दें, उनसे मेरे लिए शांति और प्रसन्नता ले आना, चाहे उसकी जो भी कीमत चुकानी पड़े।'

सेठ जिस तीर्थ में पहुँचते, वहाँ देखते कि ज्यादातर साधु स्वयं अशांत हैं। वे तीर्थयात्रियों से अपेक्षा करते कि कुछ-न-कुछ उन्हें भेंट किया जाए। ऐसे संत लोगों से कहा करते कि तीर्थ में किया गया दान हजारों गुना पुण्यदायक होता है।

तीर्थयात्रा के अंतिम चरण में सेठ को गंगा तट पर शांत मुद्रा में बैठे एक संत दिखाई दिए। उनके चेहरे पर मस्ती का भाव था। वे भगवान् की प्रार्थना कर रहे थे।

सेठ ने उन्हें प्रणाम करने के बाद कहा, 'महाराज, मेरे एक मित्र ने कहा था कि किन्हीं पहुँचे हुए संत से शांति व प्रसन्नता प्रदान करने वाली औषधि लेते आना। मुझे केवल आप ही ऐसे संत मिले हैं, जिन्हें देखकर भरोसा हुआ है कि आप वह औषधि दे सकते हैं।'

संत कुटिया में गए और अंदर से लाकर एक कागज की पुडि़या सेठ को थमा दी और बोले, 'इसे खोलना नहीं और बंद पुडि़या मित्र को दे देना।'

घर लौटकर सेठ ने पुडि़या मित्र को थमा दी। कुछ ही दिनों में उसने अनुभव किया कि मित्र के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया है। तब सेठ ने पुडि़या की औषधि के बारे में मित्र से पूछा।

मित्र ने वह पुडि़या सेठ को थमा दी। उसमें लिखा था, 'संतोष और विवेक सुख-शांति का एकमात्र साधन हैं।'

●●●

187.

भगवान् के दर्शन

राजा जनक समय-समय पर धर्मशास्त्र मर्मज्ञों और विद्‌वानों को सादर आमंत्रित कर अपनी जिज्ञासाओं का

समाधान किया करते थे। एक बार उन्होंने विद्वानों की सभा में पूछा, 'क्या कोई ऐसा ऋषि व मनीषी है, जो ईश्वर के साक्षात् दर्शन करा सके ?' उनका यह प्रश्न सुनकर सभी हतप्रभ हो उठे और सिर झुकाए बैठे रहे।

अचानक मुनि अष्टावक्र जनकजी के सत्संग के लिए आ पहुँचे। उनसे भी राजा जनक ने यह प्रश्न किया। वे बोले, 'भला, यह भी कोई कठिन काम है? यदि आज्ञा दें, तो मैं ईश्वर के दर्शन करा सकता हूँ।'

राजा जनक ने कहा, 'यदि यह कठिन कार्य नहीं है, तो मुझे प्रभु के दर्शन कराएँ।'

अष्टावक्र ने कहा, 'महाराज, सिंहासन पर बैठ-बैठे ईश्वर के दर्शन नहीं किए जा सकते। राजपद का अहंकार त्यागकर आप भूमि पर बैठें।'

राजा जमीन पर आकर बैठ गए। मुनि अष्टावक्र ने कहा, 'दर्शन करने से पूर्व मुझे दक्षिणा देने का संकल्प करें।'

राजा ने कहा, 'बोलिए, आप कितना धन चाहते हैं?'

अष्टावक्र ने कहा, 'आपके पास तमाम धन व संपत्ति जनता की है। आपकी कहाँ है?'

अंत में राजा ने कहा, 'यह शरीर तो मेरा है। मैं शरीर देने का संकल्प करता हूँ।'

'यह शरीर भी आपका कहाँ है। यह पंचतत्त्वों से निर्मित है। पंच तत्त्वों में इसे विलीन हो जाना है।' अष्टावक्र ने कहा।

अब तो जनक के विवेक चक्षु खुल गए। उन्होंने कहा, 'मुनिवर, आपने ज्ञान रूपी भगवान् के दर्शन मुझे करा दिए हैं। इसके लिए मैं सदा आपका आभारी रहूँगा।'

●●●

188.

सेवा का महत्त्व

कौशिक युवा ब्राह्मण थे। उन्हें लगा कि गृहस्थी में रहकर भक्ति व उपासना नहीं की जा सकती। इसलिए माता-पिता को छोड़ वे वन में साधना करने लगे। उन्हें दिव्य शक्ति प्राप्त हुई। एक बार चिड़िया के एक जोड़े ने उन पर बीट कर दी, तो उन्होंने उसे भस्म कर दिया।

एक दिन उन्होंने एक गृहस्थ के द्वार पर भिक्षा के लिए आवाज लगाई। उस घर की गृहिणी अपने पति को औषधि दे रही थी। काफी देर बाद जब वह भोजन लेकर पहुँची, तो देखा कि भिक्षुक का चेहरा क्रोध से लाल है।

वह विनयपूर्वक बोली, 'महाराज, मैं रुग्ण पति की सेवा कर रही थी, इसलिए देर हो गई।'

इन शब्दों का कौशिक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे क्रोध में बड़बड़ाते रहे।

गृहिणी का धैर्य जवाब दे गया। वह बोली, 'महाराज, गुस्सा क्यों करते हैं? मैं चिड़िया का जोड़ा नहीं हूँ, जो आपके क्रोध से भस्म हो जाऊँगी।'

यह सुनते ही वे हतप्रभ हो गए। उन्हें लगा कि यह जरूर दिव्य दृष्टि प्राप्त महिला है। उन्होंने गृहिणी से धर्म के बारे में पूछा, तो वह बोली, 'मैं पति व सास-ससुर की सेवा को ही एकमात्र धर्म मानती हूँ। आप धर्मव्याध नामक कसाई से धर्म का ज्ञान प्राप्त करें।'

ऋषि कौशिक ने देखा कि धर्मव्याध माता-पिता की सेवा में रत है। उसने ऋषि से कहा, 'माता-पिता व वृद्धजनों

की सेवा ही सर्वोपरि धर्म है। घर वापस लौट जाओ और माता-पिता की अच्छी तरह सेवा करो। भगवान् की कृपा प्राप्त हो जाएगी।'

कौशिक घर लौट गए और सेवा के बल पर ही उन्होंने ईश्वर की कृपा प्राप्त की।

●●●

189.

लोभ व्याधि है

वनवास के दौरान यक्ष ने युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न किए। उनसे एक प्रश्न किया गया कि किन-किन सद्गुणों के कारण मनुष्य क्या-क्या फल प्राप्त करता है और मानव का पतन किन-किन अवगुणों के कारण होता है?

युधिष्ठिर ने बताया, 'वेद का अभ्यास करने से मनुष्य श्रोत्रिय होता है, जबकि तपस्या से वह महत्ता प्राप्त करता है। जिसने मन पर नियंत्रण कर लिया, वह कभी दु:खी नहीं होता। सद्पुरुषों की मित्रता स्थायी होती है। अहंकार का त्याग करनेवाला सबका प्रिय होता है। जिसने क्रोध व लोभ को त्याग दिया, वह हमेशा सुखी रहता है। कामना को छोड़ने वाला और संतोष धारण करनेवाला कभी आर्थिक दृष्टि से दरिद्र नहीं हो सकता।'

कुछ क्षण रुककर उन्होंने आगे कहा, 'स्वधर्म पालन का नाम तप है। सबको सुखी देखने की इच्छा करुणा है। क्रोध मनुष्य का बैरी है और लोभ असीम व्याधि। जो जीव मात्र के हित की कामना करता है, वह साधु है। जो निर्दयी है, वह असाधु (दुर्जन) है। स्वधर्म में डटे रहना ही स्थिरता है। मन के मैल का त्याग करना ही सच्चा स्नान है।'

युधिष्ठिर ने यक्ष के असंख्य प्रश्नों का उत्तर देकर उसे संतुष्ट कर दिया। धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं सभी सद्गुणों का पालन करते थे। ऐसे अनेक प्रसंग आए, जब वे धर्म के आदेशों पर अटल रहे। अनेक कठिनाइयाँ सहन करने के बाद भी उन्होंने धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा।

●●●

190.

राजा भोज की दानशीलता

राजा भोज ने अपने राज्य में यह घोषणा करा रखी थी कि यदि किसी नागरिक के साथ शासन का कोई कर्मचारी अन्याय करता है, तो इसकी सूचना मंत्री को दी जाए। प्रजा को सताने वालों को कठोर दंड दिया जाएगा।

एक दिन एक व्यक्ति ने किसी कर्मचारी की शिकायत की कि उसने अहंकार में आकर उसे तथा उसके परिवार को सताया है। मंत्री ने जाँच के बाद उसे राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने का दंड सुना दिया।

राजा भोज प्राय: कहा करते थे, 'उत्पन्न होते ही बैरी और रोग का जो शमन नहीं करता, वह रोग और शत्रु के

प्रबल होते ही एक-न-एक दिन नष्ट हो जाता है। अत: बुद्धि का उपयोग कर रोग व शत्रु को नष्ट करने का प्रयास करना चाहिए।'

उनका मानना था, 'उस राज्य की दुर्गति तय है, जिसका राजा अविवेकी है और जो प्रजा की भलाई की जगह अपने परिवार की सुख-सुविधा में लगा रहता है। जिस राजा का मंत्री असंयमी व दुष्ट हो, वह एक दिन अपने राज्य से हाथ धो बैठता है। दुष्ट मंत्री के कारण प्रजा के कष्टों का समाचार राजा तक नहीं पहुँच पाता। इससे प्रजा में असंतोष पनपता है। यह राजा के पतन का कारण बनता है। इसलिए राजा को मंत्री के अलावा भी अन्य संपर्क-साधनों से जनता की समस्याओं से अवगत होने का प्रयास करते रहना चाहिए।'

राजा भोज संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे और दानशील तो ऐसे थे कि जरूरतमंदों के घरों में चुपचाप अन्न-वस्त्र पहुँचाकर अत्यंत संतोष की अनुभूति करते थे।

●●●

191.

मीठे वचनों का महत्त्व

ईसा अपने भक्तों को मधुर वचन बोलने और सभी से प्रेम करने की प्रेरणा दिया करते थे। वे कहा करते थे, 'वाणी का संयम कर लेने वाला व्यक्ति मित्रों और हितैषियों से घिरा रहता है, जबकि तीखा वचन बोलने वाला नए-नए विरोधी पैदा कर लेता है।'

बाइबिल की एक कहानी के अनुसार, दाऊद कहता है, 'हे वीर, तू किसी की निंदा क्यों करता है? तेरी जीभ हर क्षण दुश्मन गढ़ती है। जो बिना सोचे-समझे बोलते हैं, उनका अनर्गल बोलना तलवार के वार की तरह चुभता है।'

राजा सुलेमान कहते हैं, 'जीभ के वश में है कि वह जीवन को दु:खी बनाती है या सुखी। यदि जिह्वा से कटु वचन निकलते हैं, तो जीवन विद्वेष और विवादों में घिरने लगता है। इसके विपरीत यदि जिह्वा से मीठे वचन निकलते हैं, तो मित्रों से प्रेम मिलने लगता है। मधुर वाणी आदमी को हमेशा विवादों से दूर रखती है।'

याकूब लिखते हैं, 'यदि एक मनुष्य अपनी जीभ को नियंत्रित कर सकता है, तो वह अपनी देह को भी वश में कर सकता है, ठीक वैसे ही, जैसे मुँह पर लगी लगाम घोड़े को नियंत्रण में रखे रखती है। जिस प्रकार छोड़ी सी चिनगारी संपूर्ण जंगल में आग लगा सकती है, वैसे ही अनियंत्रित जीभ एक बड़ा विनाश ला सकती है।'

नीतिवचन में कहा गया है, 'प्रेम-भरे वचन कहने और सुनने वाले—दोनों व्यक्तियों का जीवन शांतिपूर्ण बनाते हैं। मनभावन वचन मधु से भरे छत्तों के समान मीठे लगते हैं एवं शरीर व मन को स्वस्थ और शांत बनाए रखते हैं।'

●●●

192.

संयम से स्वास्थ्य

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के निकट एक गाँव में ठहरे हुए थे। अनेक व्यक्ति उनके सत्संग के लिए आते रहते थे। एक दिन एक धनी व्यक्ति उनके दर्शन के लिए पहुँचा। भारी-भरकम बेडौल शरीर के कारण उससे अच्छी तरह चला भी नहीं जा रहा था। वह झुककर उन्हें प्रणाम भी नहीं कर पाया। उसने खड़े-खड़े विनम्रता से कहा, 'भगवन्, मेरा शरीर अनेक व्याधियों का अड्डा बन चुका है। रात को न नींद आ पाती है और न दिन में चैन से बैठ पाता हूँ। मुझे रोगमुक्ति का साधन बताने की अनुकंपा करें।'

भगवान् बुद्ध ने कहा, 'प्रचुर भोजन करने से उत्पन्न आलस्य व निद्रा, भोग व अनंत इच्छाओं की कामना, शारीरिक श्रम का अभाव—ये सब रोग पनपने के कारण हैं। जीभ पर नियंत्रण रखने, संयमपूर्ण सादा सात्त्विक भोजन करने, शारीरिक श्रम करने, सत्कर्मों में रत रहने और अपनी इच्छाएँ सीमित करने से ये रोग स्वत: विदा होने लगते हैं। असीमित इच्छाएँ और अपेक्षाएँ शरीर को घुन की तरह जर्जर बना डालती हैं, इसलिए सबसे पहले उन्हें त्यागो।'

सेठ ने उनके वचनों का पालन करने का संकल्प लिया और लौट गया। एक महीने में ही वह स्वस्थ हो गया। उसने बुद्ध के पास जाकर कहा, 'शरीर का रोग तो आपकी कृपा से दूर हो गया। अब चित्त का प्रबोधन कैसे हो।'

बुद्ध ने कहा, 'अच्छा सोचो, अच्छा करो और अच्छे लोगों का संग करो। विचारों का संयम चित्त को शांति और संतोष देगा।'

सेठ बुद्ध के बताए मार्गों पर चलने लगा, फिर जल्दी ही उसे लाभ नजर आने लगा।

●●●

193.

अध्ययन का महत्त्व

मुनि भारद्वाज के पुत्र यवक्रीत की इच्छा थी कि वह वेदों के विद्वान् के रूप में ख्याति अर्जित करे, किंतु उसे न तो धर्मशास्त्रों के अध्ययन में रुचि थी और न वह किसी गुरुकुल में ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। यवक्रीत घोर तपस्या से प्राप्त वरदान के जरिये अपनी यह इच्छा साकार करना चाहता था। आखिरकार उसकी तपस्या से प्रभावित होकर इंद्र देवता प्रकट हुए। उन्होंने पूछा, 'वत्स! तुम क्या चाहते हो?'

उसने उत्तर दिया, 'मैं वेद शास्त्रों का विद्वान् होना चाहता हूँ, किंतु अध्ययन में समय बरबाद नहीं करना चाहता।'

इंद्र ने कहा, 'तप की जगह किसी गुरुकुल में अध्ययन करके ही वेदज्ञ बनना संभव है।' पर यवक्रीत तैयार नहीं हुआ और पुन: कठोर तप करने लगा।

एक दिन यवक्रीत गंगा स्नान के लिए पहुँचा। तट पर उसने देखा कि एक वृद्ध चुपचाप मुट्ठी में रेत भर-भरकर गंगाजी में डाल रहा है।

यवक्रीत ने पूछा, 'बाबा, रेत गंगा में क्यों डाल रहे हो?'

वृद्ध का जवाब था, 'लोगों को गंगा पार करने में कष्ट होता है। मैं रेत का पुल बनाना चाहता हूँ।'

यवक्रीत उसकी मूर्खता पर हँसकर बोला, 'परिश्रम और युक्ति के बिना भी कहीं पुल बनता है? केवल रेत डालने से पुल कैसे बनेगा?'

तभी यवक्रीत ने देखा कि वृद्ध की जगह इंद्र देवता खड़े हैं। उन्होंने कहा, 'तुम भी तो बिना अध्ययन के वेदज्ञ बनना चाहते हो। क्या वेद-शास्त्रों के अध्ययन व परिश्रम के बगैर तुम्हारी इच्छा पूरी होगी?'

यवक्रीत की आँखें खुल गईं। उसने तप छोड़कर अध्ययन किया और वेदज्ञ बन गया।

●●●

194.

विठोबा ही मेरे राम हैं

समर्थ गुरु संत रामदास भगवान् श्रीराम के परम उपासक थे। महाराष्ट्र में जगह-जगह उन्होंने श्रीराम तथा हनुमान मंदिर स्थापित कराए। वे कहा करते थे, 'यदि हनुमानजी को प्रसन्न करना है, तो उनके समान महावीर, बलशाली बनो। अखाड़ों में जाकर व्यायाम करो और शरीर को पुष्ट करो। भगवान् श्रीराम का काज पूरा करने के लिए सदैव तत्पर रहो।'

स्वामी रामदास ने ही छत्रपति शिवाजी को श्रीराम की तरह न्याय और धर्म की रक्षा के लिए सतत् संघर्ष करने की प्रेरणा दी थी।

स्वामी रामदास एक बार महाराष्ट्र के प्रमुख तीर्थ पंढरपुर पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिमा है, जिन्हें 'विठोबा' या 'विट्ठल कृष्ण' के नाम से पुकारा जाता है। स्वामी रामदास भगवान् श्रीराम के उपासक थे। उन्होंने पंढरपुर की तुलना अयोध्या से और विठोबा की तुलना श्रीराम से करते हुए कहा, *काय केली अयोध्यापुरी, येथे वसविली पंढरी, काय केली सरयू गंगा, येथे अणिली चंद्रभागा।* यानी यहाँ पंढरपुर में मेघवर्ण के साँवले विठोबा कृष्ण मेरे राम हैं और रखुबाई (रुक्मिणी) ही मेरे लिए सीता माता हैं। अयोध्या जाकर और सरयू नहाकर क्या करूँगा। यहीं पंढरपुर में रहूँगा और चंद्रभागा नदी में स्नान करूँगा। उन्होंने लिखा, 'यहाँ के ग्वाल-बाल ही मेरे राम के वानर हैं। इन्हीं में अपने हनुमानजी के दर्शन करूँगा।'

उल्लेखनीय है कि शंकराचार्य, संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम, संत नामदेव आदि संतों ने भी कभी श्रीराम और श्रीकृष्ण में भेदभाव नहीं किया।

●●●

195.

हृदय ही खुदा का घर है

बाबा शेख फरीद का जन्म वर्ष 1173 में मुल्तान जिला के खोतवाल गाँव में हुआ था। अनेक वर्षों तक हरियाणा के हांसी (हिसार) में रहकर वे खुदा की इबादत में लगे रहे। एक बार उन्होंने देखा कि नया-नया फकीर बना एक युवक किसी से भोजन नहीं मिलने पर गुस्से में गालियाँ दे रहा है।

युवा फकीर को शांत करते हुए बाबा ने कहा, 'खुदा के अलावा किसी से कुछ अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जो दे, उसका भी भला और जो न दे, उसका भी भला—इस बात को मानकर चलना चाहिए। हृदय में ही खुदा का निवास है। दूसरे को गाली देकर क्या हम दोजख (नरक) में जाने का काम नहीं कर रहे?'

बाबा के शब्दों ने जादू का काम किया और वह युवक उनका शिष्य बन गया। बाबा ने हमेशा ऊँच-नीच की भावना का विरोध किया। उन्होंने लिखा, 'अय फरीद, जब खालिक खुलक के भीतर मौजूद है और उसी में सबकुछ समाया है, तो किसको मंद और नीच समझा जाए।'

फरीद सूफी फकीर थे। उन्होंने फारसी में कविताओं की रचना की। उन्होंने लिखा, *वार पराये वेसना साईं मुझे न देई*/ईश्वर को छोड़कर किसी से आशा नहीं करनी चाहिए। एक शिष्य की जिज्ञासा का समाधान करते हुए उन्होंने कहा, 'संतोष, नम्रता, सहनशीलता, ईमानदारी, त्याग और उदारता ऐसे गुण हैं, जो आदमी को खुदा के पास ले जाते हैं।'

जब एक युवक परिवार त्यागकर उनका शिष्य बनने पहुँचा, तो उन्होंने युवक से कहा कि वृद्ध माता-पिता, पत्नी व बच्चों का दिल दुखाकर कोई जन्नत नहीं पा सकता। बाबा फरीद की बात सुनकर वह युवक वापस लौट गया।

●●●

196.

अनूठी सहनशीलता

भगिनी निवेदिता धर्म, अध्यात्म तथा भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर अपना देश व परिवार छोड़कर भारत आईं। स्वामी विवेकानंद के प्रवचनों ने उन्हें इसके लिए प्रेरित किया था। एक दिन उन्होंने देखा कि स्वामी विवेकानंद किसी जिज्ञासु के प्रश्न का उत्तर देते हुए कह रहे थे कि बेसहारा अनाथ बच्चे साक्षात् भगवान् के समान हैं। दरिद्रनारायण की सेवा भगवान् की सेवा है। भगिनी निवेदिता ने उसी समय संकल्प ले लिया कि वह बंगाल में अनाथ बालक-बालिकाओं के कल्याण के लिए एक आश्रम की स्थापना करेंगी।

भगिनी निवेदिता कोलकाता के धनाढ्यों के पास पहुँचकर आश्रम के लिए दान माँगने लगीं। एक दिन वह किसी ऐसे सेठ के पास जा पहुँची, जो अत्यंत कंजूस था। उसने विदेशी गोरी युवती को दान माँगते देखा, तो कहा, 'मैंने मेहनत से एक-एक पैसा जोड़ा है। आश्रम-वाश्रम में दान क्यों दूँ?' फिर भी निवेदिता बार-बार कुछ देने का आग्रह करती रहीं।

बार-बार माँगने से सेठ आपा खो बैठा और उसने भगिनी निवेदिता को थप्पड़ जड़ दिया। थप्पड़ खाकर भी युवती ने धैर्य के साथ कहा, 'आपने मुझे थप्पड़ दिया, इसे मैं स्वीकार करती हूँ। अब अनाथ बच्चों के लिए भी तो कुछ

दीजिए।'

भगिनी निवेदिता की सहनशीलता और समर्पण देख सेठ अपने कृत्य पर पछताने लगा। उसने आलमारी से रकम निकालकर उन्हें भेंट कर दी। साथ ही अपने व्यवहार के लिए उनसे क्षमा भी माँगी।

●●●

197.

बलि प्रथा अधर्म है

ढाई सौ वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र में जन्मे योगिराज वनखंडी महाराज परम विरक्त व सेवा भावी संत थे। उन्होंने दस वर्ष की आयु में ही उदासीन संप्रदाय के सिद्ध संत स्वामी मेलारामजी से दीक्षा लेकर समस्त जीवन धर्म व समाज के लिए समर्पित करने का संकल्प लिया। एक बार पटियाला के राजा कर्मसिंह संत वनखंडी को अपने राजमहल में ले गए। जब उन्होंने उनसे रात को महल में ही निवास करने का आग्रह किया, तो वनखंडी महाराज ने कहा, 'साधु को किसी भी गृहस्थ के घर नहीं ठहरना चाहिए।' राजा के हठ को देखकर वे रुक गए और आधी रात को चुपचाप महल से निकलकर वन में जा पहुँचे।

संत वनखंडी एक बार तीर्थयात्रा करते हुए असम के कामाख्या देवी के मंदिर के दर्शनों के लिए पहुँचे। उन्हें पता चला कि कुछ अंधविश्वासी लोग देवी को प्रसन्न करने के नाम पर निरीह पशु-पक्षियों की बलि देते हैं। कभी-कभी कुछ दबंग व धनी लोग व्यक्तिगत हित साधने के लिए नरबलि जैसा पाप कर्म करने से भी बाज नहीं आते। वनखंडी महाराज ने निर्भीकतापूर्वक सभी के समक्ष कहा, 'सभी प्राणिजन देवी माँ की संतान हैं। माँ करुणामयी होती है, वह किसी की बलि से खुश कैसे हो सकती है।' उसी दिन से सभी ने संकल्प लिया कि नरबलि जैसा घोर पाप कर्म कभी नहीं होगा।

वनखंडीजी सिंध-सक्खर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सिंधु नदी के तट पर उदासीन संप्रदाय के साधुबेला तीर्थ की स्थापना की। यह तीर्थ उनकी कीर्ति का साकार स्मारक है।

●●●

198.

अनूठा वरदान

राज्यवद्र्धन परम धर्मात्मा तथा प्रजाहितैषी राजा थे। एक दिन रानी मानिनी उनके सिर में तेल लगा रही थीं कि अचानक उन्हें कुछ सफेद बाल दिखे। रानी चिंतित हो उठीं। राजा को जब पत्नी की चिंता का कारण पता चला, तो वे बोले, 'जन्म लेने के बाद सभी जवान होते हैं और उन्हें बूढ़ा भी होना पड़ता है। इसलिए चिंता कैसी?' फिर एक

दिन राजा ने घोषणा की, 'हमने पूर्ण धर्मानुसार जीवन बिताया है। प्रजा की सेवा में कोई कसर नहीं रखी। अब बुढ़ापे ने अपनी झलक दिखाकर हमें वन में जाकर साधना करने की प्रेरणा दी है।'

राजा प्रजा में बहुत लोकप्रिय थे। उनका यह निर्णय सुनकर सब चिंतित हो उठे। सबने राजा से वन न जाने का आग्रह किया, पर वे रुकने को तैयार नहीं हुए।

तब गंधर्व सुदाम ने सुझाव दिया कि भगवान् भास्कर को प्रसन्न किया जाए। वे राजा को सैकड़ों वर्षों तक स्वस्थ बने रहने का वरदान दे सकते हैं। राज्य के अनेक लोगों ने कामरूप पर्वत पर जाकर तप शुरू कर दिया। घोर तप के बाद भगवान् भास्कर ने दर्शन दिए और सभी से वर माँगने को कहा।

प्रजाजनों ने कहा, 'हमारे राजा को सैकड़ों वर्ष तक रोग न हो और बुढ़ापा उनसे दूर रहे।'

भगवान् भास्कर ने तथास्तु कह दिया। राज्यवर्द्धन को जब यह बताया गया, तो वे बोले, 'तब तक तो रानी समेत कोई प्रियजन जीवित नहीं रहेगा। भला मैं अकेला जीवित रहकर क्या करूँगा?'

भगवान् भास्कर राजा की इस भावना से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा के बंधु-बांधवों तथा प्रजा को भी दीर्घायु होने का वरदान दिया।

●●●

199.

कल्याण का सरल साधन

कुरुक्षेत्र में खग्रास सूर्यग्रहण लगा था। ब्रज से वसुदेवजी भी वहाँ पहुँचे। ऋषि गणों के शिविर में उन्होंने शास्त्र प्रवक्ता व्यासजी से अनेक प्रश्न किए। वसुदेवजी ने जिज्ञासावश पूछा, 'सद्गृहस्थ के लिए कल्याण के सरल साधन कौन से हैं?'

महर्षि व्यास ने कहा, 'न्यायपूर्वक अर्जित धन से पूजन-अर्चन तथा यज्ञ करें, इच्छाएँ सीमित रखें, परिवार का पालन-पोषण करें और धर्म व सत्य के मार्ग पर अटल रहें—इन नियमों के पालन से स्वत: कल्याण हो जाता है।'

वसुदेवजी ने पूछा, 'ऋषिवर, इच्छाएँ त्यागने के उपाय क्या हैं?'—व्यासजी ने बताया, 'धनार्जन करें, परंतु धर्मपूर्वक और न्यायपूर्वक (ईमानदारी) ही। भले ही भूखे रहना पड़े, पर अधर्मपूर्वक (बेईमानी से) धन कदापि अर्जित न करें। वही धन सार्थक होता है, जो यज्ञ, दानादि व परोपकार में व्यय किया जाता है।' व्यासजी ने आगे कहा, 'जब मनुष्य को पौत्र हो जाए, तो उसे गृहस्थ का मोह त्यागकर तपस्या, भजन-पूजन व समाज के ऋण से उऋण होने में लग जाना चाहिए।'

वसुदेवजी ने पूछा, 'ऋषिवर, मुझे क्या करना चाहिए?' व्यासजी ने बताया, 'मधुसूदन ने साक्षात् आपके पुत्र के रूप में जन्म लिया है—यह आपके पूर्वजन्मों के पुण्यों का प्रताप है। आप समस्त कर्तव्यों से मुक्त हो चुके हैं। देवऋण से विमुक्त होने के लिए आप प्रतिदिन अग्निहोत्र व पंचयज्ञ करते रहें।'

वसुदेवजी व्यासजी से आशीर्वाद ग्रहण कर कृतकृत्य हो उठे।

●●●

200.

उपहार में पाप दे दो

संत जेरोम जैसा उपदेश देते थे, वैसा ही आचरण भी करते थे। उनकी कथनी और करनी में कोई भेद नहीं था। वे सादगी, सरलता और सात्त्विकता की साक्षात् मूर्ति थे। जेरोम प्रतिदिन अपने हाथों से किसी-न-किसी असहाय-अनाथ व्यक्ति की सेवा अवश्य करते। इतना करने के बावजूद वे हमेशा कहा करते थे, 'मैं संसार का सबसे बड़ा पापी हूँ। जाने-अनजाने अनेक पाप मुझसे होते हैं।' ईसा मसीह उनकी इस सरलता से बहुत प्रभावित थे।

एक बार क्रिसमस की रात अचानक संत जेरोम की भेंट ईसा मसीह से हो गई। ईसा ने कहा, 'आज मेरा जन्मदिन है। क्या जन्मदिन का उपहार नहीं दोगे?'

संत जेरोम ने कहा, 'मेरे पास देने को क्या है भला! मैं अपना हृदय आपको भेंट कर सकता हूँ।'

ईसा ने कहा, 'मुझे आपका हृदय नहीं, कुछ और चाहिए।'

संत ने कहा, 'वैसे तो मैं अपना पूरा शरीर आपको भेंट कर सकता हूँ, पर मैं पापी हूँ। यदि मेरे खजाने में पुण्य होते, तो मैं उन्हें आपको जन्मदिन के उपहारस्वरूप जरूर भेंट कर देता।'

ईसा ने कहा, 'जब आपके खजाने में पाप-ही-पाप हैं, तो फिर उन्हें ही मुझे उपहार में दे दें। आप अपना कोई अवगुण मुझे दे दें। मैं आपके तमाम पापों का फल भोग लूँगा।'

ईसा की प्रेमभरी वाणी सुनकर संत जेरोम की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। ईसा ने उन्हें प्यार से गले लगा लिया।

●●●

201.

असली सुख

कुरु प्रदेश का राजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त था। उसने संकल्प लिया कि अपना समस्त जीवन वह वृंदावन में बिताएगा। वृंदावन पहुँचकर यमुना तट पर उसने कुटिया बनाई और पूजा-उपासना करने लगा। एक बार मगध देश के राजा सपरिवार वृंदावन पहुँचे। जब राजा-रानी यमुना स्नान करने जा रहे थे, तब वृक्ष के नीचे उपासना में लीन तेजस्वी साधु को देखकर वे रुक गए। साधु की समाधि पूरी होने के बाद मगधराज ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'तपस्वी, मुझे आपके चेहरे के तेज से आभास होता है कि कहीं आप राजकुमार तो नहीं।' साधु ने कहा, 'राजन्, भगवान् श्रीकृष्ण की पावन लीला-भूमि में न कोई राजकुमार होता है और न राजा। श्रीकृष्ण तो अपने सखा ग्वालों को भी गले लगाते थे, इसलिए यहाँ कुल और जाति का विचार करना भी अधर्म है।'

राजा युवा तपस्वी के वचनों से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने अनुरोध किया, 'आप हमारे साथ चलें। अभी आप युवक हैं। हम आपका विवाह अपने कुल की कन्या से करा देंगे। गृहस्थ आश्रम के सभी सुख आप भोगेंगे।

कभी दु:खी नहीं रहेंगे।'

साधु ने पूछा, 'क्या राजा व धनवान को कभी दु:ख नहीं सताता? क्या राजा व गृहस्थ के परिवार में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती? फिर सुख से रहने की बात कहकर आप मुझे साधना से विरत क्यों करना चाहते हैं? श्रीकृष्ण की भक्ति में मुझे अनूठा सुख मिलता है।'

राजा ने युवा साधु को गुरु मान लिया और स्वयं भी राजपाट त्यागकर वृंदावन में रहने लगे।

❑❑❑